

संयुक्त अरब अमीरात
से प्रकाशित हिन्दी की पहली पत्रिका

निकट

सम-सामयिक साहित्य की अर्धवार्षिकी

वर्ष-3, अंक-3, मार्च, 2009

प्रमुख संपादक • अशोक कुमार
संपादक • कृष्ण बिहारी
सह संपादिका • श्रीमती कांता भाटिया
मास्को ब्यूरो प्रमुख • अनिल जन विजय
गल्फ ब्यूरो प्रमुख • सरस्वती राजशेखरन
लंदन ब्यूरो प्रमुख • तेजेन्द्र शर्मा

संपादकीय कार्यालय :

P.O Box No. 52088
Abudhabi, UAE
Mobile-00971505429756
email : krishnatbihari @ yahoo.com

मूल्य :

भारत में तीस रुपए
खाड़ी में दस दिरहम
यू.के. और अमेरिका में पांच डॉलर

आवरण :

नोवा पब्लिकेशन्स

प्रकाशक :

कप्तान इंटरनेशनल

ले-आउट और सजा :

नोवा पब्लिकेशन्स

कानूनी सलाहकार

श्री राजेश तिवारी, एडवोकेट
2/241, विजयखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ,
उत्तर प्रदेश, भारत।

नोट

'निकट' में प्रकाशित रचनाओं से सहमत होना, हमारी सहमति नहीं है। किसी भी विवाद का निपटारा लखनऊ हाईकोर्ट में ही होगा।



इस अंक में

	पृष्ठ सं.
प्रमुख संपादक की कलम से-हिन्दुस्तान में 'निकट' की चर्चा	2
संपादकीय 'समय से बात'	3
आपकी बात आपके पत्र	9
साक्षात्कार	
विष्णु प्रभाकर से गोरखनाथ तिवारी की लम्बी बातचीत	12
उपन्यास	
लता शर्मा के अप्रकाशित उपन्यास 'गली रंगरेजान' का एक अंश	18
कथा-परिवेश	
पाकिस्तानी कथा-परिवेश पर एक नज़र मुशर्रफ आलम जौकी की	28
कहानियां	
विभाजित - अहमद सगीर सिद्दीकी	31
दूसरा रास्ता - इतिज़ार हुसैन	34
नोंद तो नहीं टूटी - सज्जाद कबीर	39
छापामार का बेटा - महेश विक्रम शाह	42
धूप - सुदर्शन प्रियदर्शिनी	46
देखते-देखते - संतोष दीक्षित	49
माहुर - गोविन्द उपाध्याय	55
एलिज़ाबेथ - सूरजपाल चौहान	61
कन्या - महेन्द्र भीष्म	65
गिरगिट - नई कलम में ज्योति की कहीं भी प्रकाशित होने वाली पहली कहानी	68
गज़लें	
दिनेश मंज़र और इन्दु श्रीवास्तव की गज़लें	74
कविताएं	
अनामिका, सुभाष सिंगाठिया, अनिरुद्ध सिंह सेंगर और अशोक बाजपेयी की कविताएं	76
गीत	
प्रतीक मिश्र के गीत	82
समीक्षाएं	
पुस्तकों पर अमरीक सिंह दीप की समीक्षाएं	83
'तीसरी कसम' उर्फ मारे गए गुलफाम एक पुनर्पाठ-प्रभु झिंगरन	87

अगला अंक

महिला रचनाकार अंक मार्च 2009



हिन्दुस्तान में 'निकट' की चर्चा

मित्रों, मेरे लिए यह खुशी की बात है कि पत्रिका के पिछले दोनों अंक आपको पसन्द आए और आपने इसे अपना समझा। हमारा उद्देश्य भी यही था कि हिन्दी के साहित्यिक क्षेत्र में कुछ ऐसा करें जो सार्थक हो। पत्रिका आपकी होती जा रही है। मैं आपके इस विश्वास की रक्षा करूंगा कि यह हमेशा आपकी ही रहे। हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध और बड़े समाचार पत्रों तथा साहित्यिक और व्यावसायिक पत्रिकाओं में 'निकट' की व्यापक चर्चा हुई है। अमर उजाला, हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर, जनसत्ता आदि समाचार-पत्रों में 'निकट' के बारे में चर्चा पढ़ने को मिली। 'हंस' जैसी सर्वाधिक चर्चित पत्रिका के सम्पादक श्री राजेन्द्र यादव ने अपनी पत्रिका के वार्षिक कार्यक्रम की चौबीसवीं वार्षिक गोष्ठी 'भारत: इधर और उधर' और दैनिक जागरण जैसे बड़े समाचार-पत्र समूह ने अपने 'लक्ष्मी देवी ललित कला अकादमी' के रचनात्मक लेखन के प्रशिक्षुओं को दिए जाने वाले प्रमाण-पत्र वितरण समारोह जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में इस पत्रिका की जिस तरह चर्चा की और लोकार्पण को स्थान दिया, उसके लिए मैं, श्री राजेन्द्र यादव एवं योगेन्द्र मोहन जी का व्यक्तिगत स्तर पर आभारी हूँ और 'निकट-परिवार' भी इस उपलब्धि के लिए आभारी है। यह उत्साहवर्धन हमारे लिए बहुत जरूरी था। बिना उत्साहवर्धन के बड़े-बड़े सपने चकनाचूर हो जाते हैं। हिन्दी कथा साहित्य की बहुचर्चित हस्ताक्षर नासिरा शर्मा ने पत्रिका का दिल्ली में लोकार्पण करके इसे जो गौरव दिया है वह

उनकी सदाशयता को दर्शाता है। योगेन्द्र मोहन जी की सरलता और सहजता का कायल तो मैं उनसे दुबई में हुई अपनी पहली मुलाकात में ही हो गया था। उनके इस स्नेह के प्रति क्या कहूँ कि 'निकट' की चर्चा जागरण के सैंतीस संस्करणों में खाड़ी से प्रकाशित एक अच्छी साहित्यिक पत्रिका के रूप में हुई।

पत्रिकाओं में 'आउट लुक', 'इण्डिया न्यूज़', 'न्यूज़ आउट ... इन' और 'कल के लिए' ने भी पत्रिका की चर्चा की है। मैं इनका भी बहुत-बहुत आभारी हूँ। लेकिन इन सबसे ज्यादा मैं आभारी उन रचनाकारों का हूँ जिन्होंने पत्रिका के इन दो अंकों के लिए अपनी रचनाएं दीं।

कृष्ण बिहारी की कोशिशों के लिए मेरा कुछ कहना कोई अर्थ नहीं रखता। मैं सिपाही और वे मेरे सेनापति हैं। कांता भाटिया और सरस्वती राजशेखरन का हर समय 'निकट' के लिए प्रस्तुत रहना मेरे उत्साह को बढ़ाता है।

'निकट' के इस अंक में हम अपने आस-पास की दुनिया को और करीब लाने की कोशिश कर रहे हैं। इस अंक में हमारे पड़ोसी देशों से आई कहानियां भी हैं। मैंने इन कहानियों में एक खास बात नोट की कि एक वक्त में रचनाकार एक जैसी ही बात सोचते हैं। हमारे आस-पास का परिदृश्य एक जैसा ही है। अगला अंक मैं अपनी टीम के सहयोग से और बेहतर निकालने की कोशिश करूंगा।

अशोक कुमार



सम्पादकीय



‘निकट’ की दूरगामी यात्रा शुरू हो चुकी है। मंजिल न जाने कहां है। मगर उसे कदम-दर-कदम नज़दीक आना है। मुझे न तो अपने सपने को लेकर शंका थी और न उसके भविष्य को लेकर है। पत्रिका का तीसरा अंक आपको सौंपते हुए जहां हर्ष का अनुभव हो रहा है वहीं यह आश्वस्त भी कि अगले कुछ अंको बाद यह कई संकटों से मुक्त हो जाएगी। उन संकटों में से प्रमुख है पत्रिका में प्रकाशित होने वाले रचनाकारों को सम्मानजनक मानदेय देना। यहीं यह भी स्पष्ट कर दूं कि न तो मैं धन्नासेठ हूँ और न अशोक कुमार। हमने घर फूंक तमाशा देखना शुरू किया है तो सिर्फ इस उम्मीद से कि मज़े लेने वाली दुनिया को कुछ ही सही, रोशनी तो मिले। अब पत्रिका के बारे में-

नवाज़ देवबंदी साहब का एक शेर याद आ रहा है-

उसी का माल तो बिकता है इस ज़माने में
जो अपने नीम के पत्तों को ज़ाफ़रान कहे।

मैं ‘निकट’ के लिए ऐसा नहीं कहूंगा। पत्रिका की तारीफ़ हो रही है मगर मैं जानता हूँ कि इसमें कितनी कमियाँ हैं। पत्रिका जिस दिन नीम की पत्ती हो गई वह दिन मेरे लिए खुशी का होगा। मेरे हितैषियों ने जो कमियाँ गिनाई हैं। मैंने उन्हें स्वीकारा है। मुझे पत्रिका को एक मिज़ाज देना है। मैंने कई पत्रिकाओं के विकासक्रम को देखा है। कोई भी पत्रिका अपने पहले अंक से ही स्थापित नहीं हो जाती। पांच छह अंक तक आते-आते वह अपने स्वरूप के प्रति सचेत हो पाती है। तब तक वह पाठकों का विश्वास भी अर्जित कर लेती है कि निकलती रहेगी। रचनाकारों से वांछित सहयोग भी मिलना शुरू हो जाता है। यह सब सोचना मेरे सपने का हिस्सा है।

सपने ही आसमान छूते हैं। किन्तु पाठकों के सहयोग के बिना हमारा सारा श्रम व्यर्थ जाएगा। पत्रिका को बेहतर बनाने के लिए पाठकों और रचनाकारों के हर सुझाव का स्वागत है।

इसी क्रम में रचनाकारों से अनुरोध है कि अपनी रचना मेरे निवेदन पर ही भेजें। पत्रिका अर्धवार्षिक है और यदि सब कुछ अनुकूल होता गया तो मैं 2009 से इसे त्रैमासिकी कर सकूंगा और तब रचना मांगने पर ही भेजें ऐसी कोई शर्त नहीं होगी लेकिन अभी रचना को छपने में समय लगेगा। इसलिए धैर्य की ज़रूरत है। अयाचित रचनाओं का ढेर मुझे नर्वस कर रहा है।

नए रचनाकार इस बंधन से स्वतंत्र हैं। उनकी रचनाओं का स्वागत है। हर अंक में कम से कम दो नए रचनाकारों को जगह देने की कोशिश होगी। रचनाओं के प्रकाशन को लेकर पत्राचार संभव नहीं है। यदि ई-मेल पता रचना के साथ होगा तो मैं संपर्क कर सकूंगा। इस अंक में मैं ज्योति की कहीं भी प्रकाशित होने वाली पहली रचना ‘गिरगिट’ दे रहा हूँ। हालांकि, चेखव की एक मशहूर कहानी का शीर्षक भी ‘गिरगिट’ है मगर ज्योति की कहानी गिरगिट चेखव के गिरगिट से बहुत अलग है।

□

डॉ. जयनारायण बुधवार-संपादक ‘कल के लिए’ ने मुझे सलाह दी है कि पत्रिका के हर अंक में किसी शोध प्रबन्ध के कुछ अंशों को भी जगह मिले। सुझाव अच्छा है लेकिन फिलहाल एप्लिकेबल नहीं। शोध प्रबन्धों के अंश जब तक ‘कैची’ न हों तब तक वे भरती के ही लगेंगे। यदि साहित्य के सुधी पाठकों को ऐसी सामग्री चाहिए तो अनेक पत्रिकाएं हैं जिनमें इस तरह की सामग्री प्रकाशित होती है। पत्रिका को पृष्ठ छोड़कर कोई पढ़े, ऐसी पत्रिका मैं नहीं निकालना चाहता। हां, यह जरूर चाहूंगा कि पत्रिका में सार्थक बहस के मुद्दे अवश्य अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराएं। लेकिन यह भी अपने में बहस का मुद्दा है कि वे सार्थक विषय कौन से हैं जिन पर चर्चा कराई जाए। मसलन, आरक्षण एक मुद्दा है लेकिन क्या यह उतना ही

ज्वलंत और प्रासंगिक है जितना सन् 1950 में था ? 1960 में था ? 1980 में था ? मौसमी राजनीति करने वाले भारतीय नेताओं और कुछ निरर्थक वितण्डावाद पैदा करने वाले लोगों के अलावा किसको इस विषय में रत्ती भर रुचि है ? दुनिया गुलाम रही है। गुलामों का दौर भी रहा है। गोरे और कालों का भी एक अतीत और वर्तमान है। हब्शी शब्द से मैं अपरिचित नहीं हूँ। किन्तु मैं नहीं देख पा रहा हूँ कि अमेरिका के बराक ओबामा को राष्ट्रपति के चुनाव में कैण्डीडेट होने के लिए किसी तरह का आरक्षण मिला है और वे सुरक्षित सीट से चुनाव लड़ेंगे। मैं रामबिलास पासवान, मीरा कुमार, मायावती, नीतिश कुमार, लालू यादव जैसे बहुतों को न तो हरिजन मानता हूँ और न दलित। ये हरिजनों और दलितों में ब्राह्मण है और सवर्णों के सामने चीख-चीखकर चिल्लाने के बावजूद रिरियाते हैं कि वे जन्म-जन्म के लतियाए हरिजन और दलित हैं। ये अपने ढंग की स्वार्थपूर्ण राजनीति हरिजनों और दलितों में करने के अलावा समाज में भी कर रहे हैं। जाहिर है कि समाज में केवल यही नहीं है। मेरे कई मित्र हैं जो मुझसे बुरी तरह असहमत होंगे कि मैं उन्हें रचनाकार या मित्र क्यों मानता हूँ क्यों नहीं उन्हें हरिजन या दलित लेखक कहकर या विशिष्ट मित्र मानकर उनकी अलग-सी स्थापना पर मुहर लगाता। उनके लिए पत्रिकाओं में आरक्षण की मांग क्यों नहीं करता ? उन्हें यह समझाना मुश्किल है कि रचनाकार या मित्र 'कोटे' से नहीं बनते और वे यह बखूबी जानते हैं कि उनके घरों में आई पी एस, आई ए एस, आई एफ एस, डॉक्टर और इंजीनियर क्यों और कैसे दिख रहे हैं ? दिक्कत यह है कि यदि मैं उन्हें हरिजन या दलित कह दूँ तो सारी मित्रता को दरकिनार करके वे मुझ पर हरिजन ऐक्ट लगवाने में देर नहीं करेंगे। जबकि सुविधाओं के लिए वे हल्ला बोल रहे हैं कि उन्हें दलितों और हरिजनों को मिलने वाली सुविधाएं मिलें। नहीं मिलेंगी तो वे देश की ऐसी-तैसी कर डालेंगे। देश की ऐसी-तैसी तो रोज हो रही है मगर यह तो वही बात हुई कि जबरा मारे और रोने भी न दें। वे क्यों भूल जाते हैं कि उनकी पहचान रचनाकार होने के कारण है। हरिजन और दलित होने के नाते नहीं। एक महीने पहले की बात है अपने उत्तराधिकारी बदलते हुए सार्वजनिक

मंच से मायावती जी ने कहा कि उनके दल का उत्तराधिकारी चमार का बेटा ही होगा। क्या उनके अलावा कोई दूसरा यह वाक्य कहकर सुरक्षित रह सकता है ? कहां हैं मोहन नैमिषराय जिन्होंने हरि भटनागर के सामने पलाश होटल में मुझसे पूछा था कि आप हरिजन को हरिजन क्यों कहेंगे ? वे मायावती से पूछें कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा ? मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के अलावा और कौन से देश हैं जहां आरक्षण प्रणाली पिछले साठ वर्षों से लागू है। वह भी ऐसे टुच्चे समय में जबकि दुनिया अनेक न सुलझने वाली समस्याओं से जूझ रही है और हिन्दुस्तान में गुर्जर आन्दोलन एक महीने से देश को रैन्सम बनाए हुए है। मुझे गुर्जरों से या सरकार से अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ शिकायत है कि दोनों देश के साथ क्या कर रहे हैं ?

इस सम्बन्ध में दलितों के सबसे बड़े हिमायती और पैरोकार राजेन्द्र यादव हैं। उनका कहना है कि बस साठ वर्षों में ही चीं बोल गए और यह भूल गए कि हजारों वर्ष तक हरिजनों और दलितों के साथ सवर्णों ने क्या किया है ? सवर्णों का बचाव मेरा उद्देश्य नहीं है फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि यादव जी! न तो मैं भूला हूँ और न तथाकथित सवर्ण। सवर्णों के पुरखों ने अगर जुल्म की इतिहास की है तो उन्हें एक-एक करके नीचे उतारिए और चौराहों पर मन माफिक चमरौधे से जूते लगवाइए। मैं और मुझ जैसे लोग कोई विरोध नहीं करेंगे लेकिन पर-पर बाबा और उनके बाप के बाप की हरकतों की सजा पन-पनातियों और छन-छनातियों को दिलवाने में तो आप कतई सहयोग न करें। बाप द्वारा किए गए कत्ल की सजा उसकी औलाद को किसी अदालत को देते न सुना न देखा। हरिजनों और दलितों की और भी समस्याएं हैं जिनमें बाल विवाह, अशिक्षा, बाल मजदूरी और कुपोषण प्रमुख हैं। इसलिए मैं यह कह सकता हूँ कि मैं इन्हें भूला नहीं हूँ। यह इसलिए भी याद है कि सरकार और मौसमी राजनीति करने वाले चाहे किसी भी दल के हों अपना वोट बैंक बनाए रखने के लिए इसे रोज याद दिला रहे हैं। शिवमूर्ति का लघु उपन्यास 'तर्पण' इसका सबसे बड़ा और जीता जागता सबूत है कि हरिजन ऐक्ट जिस पर लगाया जा रहा है वह गन्ने और अरहर के खेत में भी

खुद को छिपा पाने में असमर्थ है। इक्कीसवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के अंतर को समझना होगा और यह भी जानना होगा कि साठ साल में मनुष्य की तीन पीढ़ियां सामने आ जाती हैं। कवच के घेरे में यदि चौथी पीढ़ी भी दयनीय हो तो हरिजन ब्राह्मण स्वयं से पूछें कि गलती किसकी है ? जब तक क्रीमी लेयर वाले लोग असुविधा ग्रस्त हरिजनों और दलितों के रास्ते से नहीं हटेंगे तब तक उनका कोई भला नहीं होने वाला मलाई तो इनके नेताओं के हक में जा रही है और सरकार उसे तो सत्ता में बने रहने के लिए वोट चाहिए। हरिजनों और दलितों का जितना इस्तेमाल सन् 1980 के बाद हरिजन और दलित नेताओं ने अपने लिए किया है उतना तो कांग्रेस ने आजादी के चालीस साल तक लगातार सरकार में रहते हुए भी नहीं किया। जाति और धर्म के नाम पर देश उतना तब नहीं बंटता जितना पिछले बीस वर्षों में। हो सकता है कि तब के हरिजन और दलित कांग्रेस को ही अपना मसीहा उसी तरह मानते रहे जैसे मुसलमान। बहुत बाद में इस सबका भरम टूटा मगर आंखों में सड़े हुए मोतियाबिन्द के माड़े आज तक साफ नहीं हुए। इन सबका इस्तेमाल हुआ और आज भी हो रहा है। इन्हें कभी मुलायम अपने दिखते हैं तो कभी मायावती। इनका अपना तो कभी कोई हुआ ही नहीं। मुसलमान तो पाकिस्तान तक में अपना सच्चा नेता नहीं पा सके। हिन्दुस्तान की तो बात ही और है। आरक्षण के विषय में मेरा कहना है कि हरिजनों और दलितों को दुनिया की सभी सुविधाएं दी जाएं लेकिन मेरिट के साथ कोई कम्प्रोमाइज़ न किया जाए। मैं सुविधाएं देने का तो हिमायती हूँ लेकिन अकर्मण्य को सीट देने और प्रमोशन देने के नाजायज हक का समर्थक नहीं हूँ। ऐसा किए जाने के नतीजे सबको मालूम है। अब भी यदि आरक्षण सुविधा भोगियों को इस शब्द से उसी बन्दरिया की तरह प्यार है जो अपने मरे हुए बच्चे की लाश को तब तक नहीं छोड़ती जब तक वह खुद गलते गलते आखिरी टुकड़ा बनकर उसके हाथ से स्वयं नहीं गिर जाता तो वे लाश को बचाने की कोशिश करें और सड़ांध में जिएं या फिर कोई ऐसी युक्ति निकालें जिससे उनके बच्चे सम्मानपूर्ण जिन्दगी समर्थ होते हुए जिएं। अपने बच्चों को स्वाभिमान सिखाएं और उनके हाथ में आरक्षण नाम का भीख का कटोरा मत दें।

मैं वंचितों का पक्षधर हूँ और वंचित सभी धर्मों और सभी जातियों में हूँ। आरक्षण उनके लिए होना चाहिए और वह भी आधुनिक युग में केवल एक पीढ़ी को मिलना चाहिए...

□

जिस सलून में दाढ़ी ट्रिम कराने जाता हूँ वह बांग्लादेशी का है। उसमें तीन मजदूर हैं। मैं सलून में किसी खास कुर्सी पर नहीं बैठता। तीनों के साथ प्यारे रिश्ते हैं। तीनों मुझे दिल से चाहते हैं और मैं जिसे भी खाली पाता हूँ उसकी कुर्सी पर जा बैठता हूँ। निश्चित रूप से दाढ़ी बनवाते समय कुछ बातें भी होती हैं। पिछले हफ्ते हुई बातचीत का एक अंश :

दादा, हम लोक एक दिन आपका कोलकाता ले लेगा.. दाढ़ी को भिगोते हुए उसने कहा।

‘ठीक है... तुम लोक कोलकाता ले लो, पाकिस्तान कश्मीर ले ले और चाइना अरुणांचल... त्रिपुरा के बारे में तुम और बर्मा आपस में तय कर लो...’ सलून में एक ठाका फैलता है। तीनों का समवेत् स्वर गूंजता है। मैं आगे जब कहता हूँ कि बीस लाख से ऊपर बांग्लादेशी हिन्दुस्तानी नागरिक होकर हिन्दुस्तान की छाती पर मूंग दल रहे हैं तो सलून में शांति व्याप जाती है। बात मजाक में शुरू हुई थी मगर अंत मजाक-सा नहीं हुआ। दाढ़ी बनाने वाले ने कहा, ‘दादा, आपका देश अच्छा है... हमारे देश में सब नेता लोक जेल में हैं...’

‘दादा, तुम्हारा देश अच्छा है। हमारे देश में जिसे जेल में होना चाहिए वह संसद में है।’ मैंने कहा तो उसने पूछा, ‘क्या कभी ऐसा वक़्त आएगा कि लोग अपनी सही जगह पर हों?’

‘आएगा... इन्तज़ार करना होगा...’ वह मेरे सिर पर चम्पी कर रहा है और मैं खुद से बेखबर इस त्रासदी पर सोच रहा हूँ कि लोग अपने देश से दूसरे देश जाकर क्यों बस रहे हैं ? कबूतरबाजी और क्या हैं ? मैंने क्यों देश छोड़ दिया ? यदि मुझे संयुक्त अरब अमीरात की नागरिकता मिले तो क्या मैं अस्वीकार करूंगा ? शायद क्या, कतई नहीं। कारण कुछ और नहीं तुलनात्मक अध्ययन होगा कि आज की तारीख में मैं यहां भारत से ज़्यादा सुरक्षित हूँ तो क्यों सांपों की बांबी में रहने की बेवकूफी करूँ ? कब तक मैं आज के इस झूठ पर जियूँ कि सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा..., था कभी..., किन्तु आज नहीं है... जो देश अपने नागरिक को सम्मान-जनक

जीवन देगा उसके नागरिक उसे सारे जहां से अच्छा कहेंगे वरना उसे जबरदस्ती अबोध बच्चों से अपनी झूठी प्रशंसा करानी पड़ेगी...

□

क्रिकेट मेरा पसंदीदा खेल रहा है। चौंतीस-पैंतीस साल की अवस्था तक खेला भी है। अबूधाबी में भी दो-तीन साल खेलता रहा। लेकिन एक वक़्त पर लगा कि अब न तो वह स्टेमिना रहा और न वे रिफ्लेक्सेस बचे। खेलना छूट गया मगर खेल देखने की दीवानगी कम नहीं हुई। आई सी एल और डी एल एफ आइ पी एल से पहले ट्वेण्टी-ट्वेण्टी वर्ल्ड कप हुआ और क्रिकेट का एक नया चेहरा देखने को मिला। मैं यह कहना चाहता हूँ कि ट्वेण्टी ओवर्स का मैच कोई नयी बात नहीं है। सन् 1987-88 में ही मैं इस फॉर्मेट में खेल चुका हूँ और तभी यह महसूस हो गया था कि यह खेल जवानों का है। आई पी एल लीग में भी यह बात देखने में आई कि खेल में जवानी का अपना अंदाज़ है। रहा सवाल इस खेल में धन वर्षा का तो इस विषय में अर्थशास्त्री और एक्टिविस्ट ही बताएंगे कि धनराज पिल्ले का लड़का यह क्यों कहता है कि अब वह हॉकी नहीं क्रिकेट खेलेगा। एक सौ बीस करोड़ की आबादी वाले देश में अगर अन्य खेलों के लिए क्वालिफाइंग टीम नहीं है तो इसके लिए जिम्मेदार देशवासी हैं या उन कुर्सियों पर बैठे वे लोग जिन्होंने वे पद हथिया रखे हैं जिन पर बैठने का उन्हें कोई हक़ नहीं है। मुझे नहीं मालूम कि कलमाडी या राजीव शुक्ला ने किसी खेल में क्या कमाल किया है ? किसी को मालूम हो तो मुझे सूचित करे। इन्होंने क्या स्कूल लेबल पर भी कभी कोई खेल खेला है ? निरंजन शाह और पवार का भी यही रिकॉर्ड होगा। गिल गए तो एक गिल की वज़ह से। दूसरे भी ऐसे ही जाएंगे।

क्या खेल में भी ऐसे लोगों को ऐसे पद मिलने चाहिए ? शरद पवार की शकल देखकर तो यह नहीं लगता कि उन्होंने अपनी जिन्दगी में सुर्ती खाने और राजनीति करने के अलावा कोई दूसरा खेल खेला है लेकिन हमारे देश का नाम हिन्दुस्तान है जहां नेता.... खेल को भी बपौती समझते हैं... और अनधिकृत सीट पर कब्ज़ा किए हैं... राजीव शुक्ला, कलमाडी और शरद पवार को सौ मीटर दौड़ाकर देखें तो सचाई सामने

आने में कितनी देर लगेगी... जिनके खेलकूदी फेफड़े खराब हो चुके हैं उन्हें इन सीटों पर किसने बिठाया है और इन सीटों पर बैठे हुए लोग, 'हराम' की कमाई पर ऐश कर रहे हैं। इस मामले पर क्या हिन्दुस्तान के एक सौ बीस करोड़ लोग कुछ सोच रहे हैं ?

एक बात और, क्रिकेट अब खेल नहीं बल्कि बाज़ार में बिकने वाला वह मादक द्रव्य हो गया है जिससे व्यापारियों को तात्कालिक लाभ मिल रहा है। लाभ के लिए ये व्यापारी खेल के मैदान पर किसी भी खिलाड़ी की लाश का उत्सव मना सकते हैं। अभी चार दिन पहले भारतीय टीम के कप्तान महेन्द्र सिंह धोनी ने कहा है कि लगातार क्रिकेट खेलने से वे थक चुके हैं तो शरद पवार ने कहा कि जो थक गया है वह खेल छोड़ दे। उन्हें शायद पता नहीं कि यह स्थिति बहुत दिन चलने वाली नहीं। उन्हें शायद यह भी पता नहीं कि यह राजनीतिक खेल नहीं है जिसमें गलित कोढ़ के कोढ़ी आखिरी सांस तक अपनी गुण्डई को हस्तांतरित किए हुए पाला बदलते हुए हर मौका हथियाकर कुर्सी से चिपके हैं...

पहले यह खेल सर्दियों में स्वेटर पहनकर खेला जाता था लेकिन अब खिलाड़ी जीत के अभिमान को दिखाने के लिए मैदान में अपनी शर्ट उतारकर छाती दिखाने लगे हैं...

□

नौकर मालिकों की हत्याएं कर रहे हैं। हर दिन ऐसी ही कोई ख़बर दिन भर की सुर्खी बन रही है। देश की राजधानी दिल्ली और उसके आस पास के चर्चित और बहुत तेज़ विकसित इलाकों नोयडा, गुडगांव, गाज़ियाबाद और फरीदाबाद में ऐसी घटना आए दिन हो रही है। कारण क्या हो सकता है ? मुझे लगता है कि कारण एक नहीं है। कई हैं। सबसे पहला तो यह कि इन इलाकों की कोठियों में रहने वालों के पास बहुत पैसा है और इन कोठियों के बीच कोठा कौन-सा है, यह जान पाना बहुत कठिन है। शायद कोठे ज़्यादा हैं और कोठियां कम। अवैध रिश्तों के जंगल को खाद-पानी, मोबाइल और इण्टरनेट के अलावा डिजिटल कैमरे देने लगे हैं। मुझे मंटो की मशहूर और बदनाम कहानी 'खुशिया' याद आ रही है। खुशिया एक दलाल है और वेश्या के लिए ग्राहक लाता है। एक दिन जब वह वेश्या के दरवाज़े पर दस्तक देता है तो उसकी आवाज़

सुनकर वेश्या भीतर से कहती है, 'आ जाओ...' जब वह भीतर पहुंचता है तो उसके सामने बाथरूम से निकलती केवल तौलिए में लिपटी वेश्या है। जीवन में पहली बार खुशिया को लगता है कि वह वेश्या उसे हाड़ मांस का पुरुष नहीं बल्कि एक हिजड़ा या फिर मानवीय संवेगों से शून्य व्यक्ति समझती आई है। प्रतिक्रियास्वरूप परिणाम यह होता है कि एक दिन वह स्वयं खरीदार होकर वेश्या के सामने खड़ा हो जाता है। नौकर पहले भी रखे जाते थे लेकिन वे प्रायः घर के ऊपरी कामों के लिए होते थे। भीतरी काम घर की महिलाएं करती थीं या फिर नौकरानी। बदले हुए इस नए जमाने में घर के बेडरूम तक नौकर घुस गया है और उसकी उपस्थिति मालिकानों के लिए मृत है। ये हत्याकाण्ड नौकरों को मृत समझने के नतीजे हैं। उसके सामने धन और शरीर का अश्लील और निर्लज्ज प्रदर्शन उसके भीतर न केवल अपने होने की कुण्ठा जगा रहा बल्कि उसे धन और शरीर के मामले में लुटेरा और कल्ली बना रहा है। जिन नेपालियों की ईमानदारी की बेईमान लोग कसम खाते थे वही नेपाली आज हिन्दुस्तान में अपनी ईमानदारी को स्थापित करने के लिए किसकी कसम खाएंगे ? इनसान को इनसान न समझना भी इन हत्याओं का प्रमुख कारण है...

□

हमारे देश में कुछ नेता हैं। कुछ पढ़े-लिखे लोग हैं। ये पढ़े लिखे लोग इन नेताओं को पढ़ा-लिखा मानते हैं। इन नेताओं की पहली नस्ल कलकत्ता में उगी। इस नस्ल के पहले नेता कुर्ता-पायजामा पहनते थे। कंधे से एक थैला लटकाए रहते थे। लाल तागा या हरा तागा बीड़ी पीते थे। इनमें जो समर्थ होता था वह चारमीनार सिगरेट धौंकता था और चौराहों पर कुल्हड़ में चाय पीता था और पिलाता था। इनके थैले में रूस या चाइना का लेनिन या माओ का सिद्धान्त वाक्य होता था जिसे ये बांटते घूमते थे। एक जमाने में ये बहुत पाप्यूलर थे। इन्हें वामपंथी कहा गया। इन वामपंथियों ने पहले कलकत्ता को लीला फिर कानपुर को। अब ये केरल को पचाने के बाद हिन्दुस्तान को लीलने पर आमदा हैं। न्युकलीयर डील क्या है, चार साल से ऊपर सरकार में शामिल रहने के बाद भी अगर ये नहीं जान सके तो दोषी कौन है ? और अगर जानते हुए भी कि यह देश हित में नहीं है और ये सरकार में शामिल रहे तो इनसे

बड़ा अवसरवादी कौन है ? समाजवादी तो पहले ही असमाजवादी साबित हो चुके हैं। इन्हें कोई कुत्ता कहे या सूअर। कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने हक में समझौते हो जाएं, इनके लिए यही बड़ी बात है। सत्ता की चाहत में सोनिया गांधी अगर इन्हीं अछूतों को अपनी पंघति में कल साथ बिठा लें तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। और ये तथाकथित अछूत, कल तक इन्हीं वामपंथियों को अपना भाई बताने वाले अगर आज मीरजाफर और जयचंद कहते हुए उनसे पल्ला झाड़ लें तो यह भी अजूबा नहीं होगा। यही राजनीति हैं। चाणक्य को नहीं भूलना चाहिए। मगर अफसोस कि अमर सिंह और मुलायम चाणक्य तो क्या उसके अंशमात्र भी नहीं हैं... देश के सामने एक संकट काल खड़ा है...

□

इंदौर दो दिनों से जल रहा है। केन्द्र सरकार कारात और मुलायम के साथ मुलाकात में व्यस्त है। निरीह लोग मारे जा रहे हैं। किसी को कोई परवाह नहीं। कारण साफ है- किसी नेता के घर का कोई नहीं मरा। कश्मीर में आग लगी थी। कोई कुछ नहीं बोला। जम्मू में आग लगी है। बहुत लोग बोल रहे हैं। इनके बोलने का अर्थ समझना जरूरी है।

साम्प्रदायिकता क्या होती है ? यदि हिन्दू होना ही साम्प्रदायिक है तो मुसलमान या ईसाई होना क्या है ? यह क्यों है कि दूसरे धर्मावलम्बी तो कुछ भी करने के बावजूद सेक्यूलर कहलाएँ और हिन्दू अगर धोती भी पहन ले तो साम्प्रदायिक हो जाए ? यह देश का दुर्भाग्य नहीं तो क्या है कि देश के सभी दलों के नेता 'वोट बैंक' के आगे कुछ नहीं सोचते...

□

'निकट' का यह अंक "आस-पास विशेषांक-2" है। इसमें बांग्लादेश, पाकिस्तान, नेपाल से आई रचनाओं के अलावा भारतीय रचनाकारों की रचनाएं शामिल हैं। बाहर की रचनाएं मुहैया कराने में सर्वश्री मुशर्रफ आलम जौकी, डॉ. खान हफ़ीज़, बापी चक्रवर्ती, डॉ. कुमुद अधिकारी ने सहयोग दिया है। मैं इन सब का आभारी हूँ। इस अंक से हम रचनाकारों को मानदेय देने की शुरुआत कर रहे हैं। रकम बहुत आकर्षक नहीं है लेकिन पत्रिका अपने प्रारम्भिक चरण में ही नेकनीयती बरतने का आचरण कर रही है। विश्वास है कि अगले कुछ अंकों के

बाद मानदेय की राशि हम बढ़ाएंगे। सूरजपाल सिंह चौहान और संतोष दीक्षित की कहानी मुझे अंक-दो की सामग्री प्रेस को भेजने के बाद मिली थी। वे इस अंक में जा रही हैं....

इस अंक में अनामिका, सुभाष सिंगाठिया और अशोक बाजपेयी की कविताएं हैं। अंक की कविताएं आज की व्यथा-कथा कहती हैं....

□

मुख पृष्ठ पर इस अंक से 'निकट' का मूल्य तीस रुपये लिखा हुआ है। यह मूल्य भारतीय पाठकों के लिए है। खाड़ी स्थित पाठकों को पत्रिका 10 दिरहम और योरप तथा अमेरिका स्थित पाठकों को यह पांच डॉलर में उपलब्ध होगी। पत्रिका के स्वरूप को देखते हुए यह कीमत बहुत कम है। पत्रिका को प्रकाशित करने और उसे डाक द्वारा भेजने का खर्च बहुत ज्यादा है। साथ ही रचनाकारों को मानदेय भी देना है..... पत्रिका को खरीदकर पढ़ें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि प्रकाशित सामग्री को पढ़ने के बाद चुकाए गए मूल्य को लेकर आपको निराश नहीं होना पड़ेगा...

समीक्षा के लिए संस्मरण, आत्मकथा, कहानी संग्रह और उपन्यास की दो प्रतियां पत्रिका के सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें। कविता संग्रहों की समीक्षा सम्भव नहीं है।

□

छपते छपते :

बहुमत साबित करते हुए संसद शर्मसार हुई, व्यक्तिगत स्तर पर। ओलम्पिक में तीन मेडल आए, व्यक्तिगत स्तर पर। दिल्ली में धमाके हुए संगठित स्तर पर। क्या भारतीयों को अपनी सुरक्षा भी व्यक्तिगत स्तर पर ही करनी होगी ? या सरकार नामक संगठन कुछ करेगा? नेता यह भी बता देते तो अच्छा होता... प्रधानमंत्री की कैबिनेट मीटिंग में आतंकवाद

रोकने के लिए किसी कड़े कानून को बनाने में सहमति नहीं हो सकी। क्यों ? नेता किसको बचाना चाहते हैं ? और यह कौन नहीं जानता ? सुरक्षा के घेरे में सपरिवार जीने वालों इतना मुगालता ठीक नहीं... फूल पूफ तो कुछ भी नहीं रहा। वह भी तुम्हारे ही चलते...

□

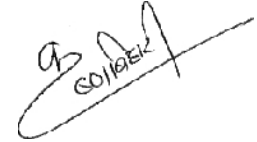
नाटक की दुनिया से एक बहुत बड़ा नाम हमारे बीच अब नहीं रहा। विजय तेंडुलकर। साहित्य जगत् के लिए यह अपूर्णनीय क्षति

'निकट' की ओर से इस अविस्मरणीय समस्या-गायक को श्रद्धा - सुमन...

अभी-अभी पता चला कि प्रभा खेतान नहीं रहीं। कथा साहित्य, उपन्यास और अनुवाद की दुनिया में एक चर्चित नाम। जिसे दो वर्ष पहले अपनी आत्मकथा लिखी 'अन्या से अनन्या'। इसी कृति को मैंने 'निकट' के पिछले अंक में कमजोर कहा था। कहां मालूम था कि उसे लिखने वाला ही जीवन की लड़ाई हार रहा था। प्रभा खेतान को हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि।

आदरणीय श्री विष्णु प्रभाकर की याददाश्त 30 जुलाई 2008 को चली गई। श्री श्रीलाल शुक्ल भी बहुत अस्वस्थ हैं। आज ही उन्हें लखनऊ में पी.जी.आई. में भरती कराया गया है। इनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना के साथ-निकट परिवार।

आपका



□

आपकी बात आपके पत्र

निकट के दो अंक आप तक पहुंचाए गए हैं। मैंने चाहा था कि आप अपनी राय लिखकर पहुंचाएं। मेरी उम्मीदें ज्यादा थीं या शायद आप ही इतने मशरूफ थे कि प्रतिक्रियाएं लिखित रूप में कम और फोन के माध्यम से अधिक मिलीं। अफसोस इस बात का है कि राय जानने के लिए फोन भी मैंने ही किए। जिन्होंने फोन पर अपनी राय दी उन्होंने लिखित में अपनी प्रतिक्रिया भेजने का वायदा किया था। वायदा करने वाले रचनाकार थे। लेकिन उनका वायदा, वायदा ही रह गया। पता नहीं, ये रचनाकार अपनी रचनाएं कैसे लिखते हैं! खैर, तकनीकी जगत् की इस क्रांति को हमने पत्रिका के प्रवेशांक से ही जान लिया था कि रचनाओं पर प्रतिक्रियाएं अब मौखिक ही मिला करेंगी। शायद इसीलिए इस कॉलम का शीर्षक हमने आपकी बात : आपके पत्र रखा था...

निकट के पिछले दो अंकों पर जिन्होंने मुझसे फोन पर या मिलने पर कुछ कहा, उनमें राजेन्द्र यादव, अरूण प्रकाश, रवीन्द्र कालिया, हरि भटनागर, दर्यानंद पाण्डेय, जया जादवानी, संजीव, राकेश पाण्डेय, विनोद श्रीवास्तव, रजनी गुप्त, राजेश तिवारी, योगेन्द्र मोहन, अशोक कुमार श्रीवास्तव, पूर्णिमा वर्मन, चित्रा मुद्गल, अनुज गुप्त, सोहनलाल आर्य, ममता कालिया, राजेन्द्र राव, अशोक मिश्र और गीताश्री प्रमुख हैं।

राजेन्द्र यादव ने छूटते ही कहा - गेट अप बहुत खराब है। रवीन्द्र कालिया का कहना है कि आप प्रवासी रचनाकारों को ही पत्रिका में स्थान दें। संजीव का विचार है कि पत्रिका में फोंट्स आकर्षक होने चाहिए। हरि भटनागर के अनुसार इसका स्मारिका लुक हर तरह से अनाकर्षक है। राजेन्द्र राव चाहते हैं कि पत्रिका में रचनाओं के साथ जो चित्र हों वे बचकाने न हों। चित्रों का काम रचना को समझाना नहीं है। अन्य लोगों ने मिली जुली राय व्यक्त है कि पत्रिका सुन्दर और स्वस्थ है। इसका भविष्य उज्ज्वल है। ऊपर जिन नामों का उल्लेख किया है, इनमें से अधिकांश लेखन, प्रकाशन और सम्पादन से जुड़े

हैं। अच्छा होता कि इनके सुझाव लिखित रूप में मिले होते। फिर भी जो बातें मुख्य रूप से कही गई हैं और जिन कमियों की ओर इशारा किया गया है, उन पर हमने गम्भीरता से सोचा है और कोशिश की है कि बहुत सी शिकायतें दूर हो सकें...

एक सुझाव जो रवीन्द्र कालिया और भारत भारद्वाज ने दिया कि पत्रिका में केवल प्रवासी लेखकों या अरबी दुनिया में रहने वाले हिन्दी के उभरते रचनाकारों को ही मंच दिया जाए तो इस संबंध में निवेदन करना है कि हम प्रवासी नहीं, हिन्दी की सम-सामयिक साहित्यिक पत्रिका निकाल रहे हैं और हमारी कोशिश इसे हिन्दी की विशिष्ट पत्रिकाओं की कतार में स्थान दिलाना है। प्रवासी रचनाकारों को भारत से प्रकाशित और संपादित होने वाली पत्रिकाएं स्थान दें तब तो इन रचनाकारों को मान मिलेगा अन्यथा भारत से बाहर संपादित पत्रिकाओं में छपते हुए तो ये हमेशा हाशिए पर ही रखे जाएंगे। इसलिए यह सुझाव स्वीकार किए जाने लायक नहीं है। हां, प्रवासी रचनाकारों और नए रचनाकारों का स्वागत है। वे विदेश में रहते हों या हिन्दुस्तान में इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। निकट में उन्हें जगह मिलेगी।

अब कुछ पत्र

“निकट” का आस - पास विशेषांक - 1 मिल गया है। स्वास्थ्य साथ नहीं दे रहा। 96 वर्ष का हो चुका। सरसरी निगाह डाली है। कहानियों का चयन और सम्पादकीय बहुत सामयिक है। कृष्ण बिहारी, कैसे कर लेते हो तुम यह सब ? इतना सारा काम! मगर मैं सोचता हूं कि काम ऐसे ही होता है। आगे बढ़ो, मेरा आशीष तुम्हारी मेहनत के साथ है।

- विष्णु प्रभाकर, नई दिल्ली।

धन्य हो मित्र! जो लिखने के साथ इतना विकट साहस संजोये हो कि पत्रिका भी निकाल सको। तुम्हारा खून-पसीना “निकट” के सम्पादन में दिख रहा है। मैंने दोनों अंक पढ़े। उत्तम सामग्री है। सभी कहानियां अपने अपने आस - पास की

लगती हैं। रजनी गुप्त का उपन्यास अंश उत्सुकता जगाने में सफल है और तुम्हारी आत्मकथा का अंश। ऐसा जीवन जिया है तुमने ? अपने आप में यह एक संपूर्ण पत्रिका है। क्या तुम इसका ले-आउट थोड़ा बदलकर इसे स्मारिका लुक से हटाने की कोशिश करोगे ? पत्रिकाओं की भीड़ में फिर “निकट” की बात ही और होगी। आस-पास विशेषांक -2 के बाद क्या दे रहे हो ? -लता शर्मा, भानपुरा, मध्यप्रदेश।

‘निकट’ का आस-पास अंक-1 पढ़ लिया। सभी कहानियां सराहनीय हैं। राजेन्द्र राव की रचना बहुत दिनों बाद दिखी। सामग्री का चयन प्रशंसनीय है। -नासिरा शर्मा, दिल्ली

कृष्ण बिहारी जी, पत्रिका तो जो है, वह है ही। क्या आपको ज़रा भी डर नहीं लगता ? इतना बेबाक सम्पादकीय! राजेन्द्र राव की कहानी ‘यशोधरा ही ठीक है!’ बहुत अच्छी लगी। ‘संबंध’, ‘एण्टी पार्टिकल’, ‘सजाए मोहब्बत’ और ‘माई’ कहानी तो ज़िन्दगी की सचाइयां हैं!

- इन्द्रजीत त्रिपाठी, गोरखपुर।

“निकट” के बारे में दैनिक जागरण में पढ़ा। पत्रिका कैसे मिल सकती है ? दाम कितना देना होगा ? आपकी रचनाओं से परिचित हूँ। अब आपके सम्पादन में निकली इस पत्रिका को भी पढ़ने की उत्सुकता है। मैं आजीवन सदस्य बनना चाहता हूँ।

- योगेश कुमार धीर “पथिक”, मेरठ।

कृष्णबिहारी जी, “निकट” के दोनों अंक पढ़े। सम्पादकीय और कहानियां पत्रिका की जान हैं।

- नवराज मिश्र, पादरी बाज़ार, गोरखपुर।

“आउट लुक” और “इण्डिया न्यूज़” के अलावा “हंस” में “निकट” के बारे में पढ़ा। मुझे यह पत्रिका चाहिए। कैसे मिल सकती है ? - अशीष कुमार पाठक, उन्नाव, यू. पी।

अर्मापुर कानपुर में इस पत्रिका को मैंने हर उस शख्स तक पहुँचाया है जिसे हिन्दी साहित्य के वर्तमान से सरोकार है। लोगों ने इसे इतना पसन्द किया है कि मेरी अपनी प्रति भी मेरे पास नहीं है। मुझे भेजे जाने वाले अंकों की प्रतियां बढ़ाएं और मूल्य भी लिखें। - गोविन्द उपाध्याय, कानपुर।

“निकट” के दोनों अंक मिले। हम तो तुम्हें घर का जोगी जोगना ही समझते थे। लेकिन इन दो अंको को पढ़कर लगा कि जो कुछ तुम साहित्य और समाज को लेकर सोच रहे थे

वह सच था। ‘अमर उजाला’ ‘दैनिक जागरण’ के अलावा अन्य अखबारों में भी इस पत्रिका के बारे में पढ़ने को मिला। पत्रिका संग्रहणीय है। - अमरीक सिंह दीप, कानपुर।

पत्रिका मिली। अंक बहुत अच्छा निकाला है। सदस्यता शुल्क बताएं। - सुशीला पुरी, लखनऊ।

पत्रिका बराबर मिल रही है। अच्छी रचनाएं पढ़ने को मिलीं। - संतोष दीक्षित, पटना।

‘निकट’ का दूसरा अंक भी समय पर मिला। संपादकीय बहुत धारदार है। हरि भटनागर की कहानी ‘माई’ और राजेन्द्र यादव की कहानी ‘संबंध’ ने दिल को छू लिया।

- अवतार कौर, दिल्ली।

‘निकट’ की दसो प्रतियां साहित्यिक मित्रों में बंट गई। सब की राय है कि पत्रिका अपना मूल्य तय करे ताकि हम लोग इसे खरीदकर पढ़ें। इतनी दूर से पत्रिका निकालना और इतनी अच्छी सामग्री का उपाय करना सराहनीय है।

- सुभाष सिंगाठिया, श्रीगंगानगर, राजस्थान।

‘सजाए मोहब्बत’, ‘माई’, ‘संबंध’ और लम्बी कहानी ‘मन्ना! जल्दी आना’ रचनाएं बहुत पसन्द आईं। संपादकीय और उपन्यास अंश भी अच्छा लगा।

- यतीन्द्रनाथ राही, भोपाल।

कृष्ण बिहारी जी, पत्रिका की सामग्री स्तरीय है। परिवार में पढ़ी जा सकने लायक इस पत्रिका की उत्तराखण्ड एसोसिएशन के सदस्यों ने सराहना की है। - एन चन्द्रा, अबूधाबी।

पत्रिका में संपादकीय, उपन्यास अंश, कहानियाँ, कविताएँ और गज़लें सब कुछ तो पठनीय और प्रशंसनीय है। पुस्तक समीक्षाएं और बढ़ाएं।

-नर्वदेश्वर तिवारी, कुण्डाभरथ, गोरखपुर।

और अंत में रतलाम से हेमेन्द्र कुमार यति का लम्बा पत्र कृष्ण बिहारी जी

सादर प्रणाम।

वर्तमान आधुनिक युग में जब भारत अपनी संस्कृति की पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत है। इस साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन अर्थात् शुद्ध, स्वच्छ, द्वेषरहित प्रेममयी वातावरण को स्थापित करने का बीड़ा उठाना ही है। आज साहित्य का स्थान

भले ही कल जहाँ था वहीं हो लेकिन मुझे यह कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि साहित्यिक पत्रिकाओं के पाठक मुट्ठी भर हैं, ऐसे में आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, आदि अनेक कठिनाइयों को झेलकर पत्रिका का प्रकाशन किसी चुनौती पर विजय प्राप्त कर लेने से कम नहीं है। सभी पत्रिकाएँ आरंभ में कुछ कठिनाई के दौर से गुजरी हैं, चाहे 'सरस्वती' हो या 'हंस', 'नवनीत' हो या 'आजकल'। आज ये सभी शीर्ष पर हैं। "निकट" ने तो हाल ही में अपनी यात्रा आरंभ की है, मेरा अटूट विश्वास है कि आने वाले समय में निश्चित ही यह पत्रिका साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनायेगी।

आपने अपने अध्यवसायी जीवन के कुछ क्षण "निकट" को प्रदान कर- साहित्याकाश में एक ऐसे नक्षत्र की संरचना कर दी जिसकी दीप्ति से प्रत्येक पाठक जगमगा उठा। खाड़ी देशों से निकलकर प्रशंसित हो रही हिन्दी की पहली पत्रिका "निकट" को अपने हाथों में देख मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। निःसन्देह पत्रिका स्वागत के योग्य है यह बहुत ही अनूठा और सराहनीय प्रयास है।

"निकट" का रंग, ढंग, कलेवर और तेवर देखे, अच्छे भी लगे। कुछ परिवर्तन, कुछ बदलाव, की संभावना के साथ मुद्रण एवं कागज उत्कृष्ट है। चित्रांकन में सुधार की आवश्यकता है, रंग संयोजन पृष्ठों के भीतर लुप्त है। मुख पृष्ठ स्तरीय और आकर्षक होना चाहिए, चूंकि बेहतरीन की गुंजाइश और उम्मीद तो सदैव बनी रहेगी। पत्रिका पठनीय और आकर्षण की दृष्टि से समृद्धतर प्रतीत हुई, वैचारिक के साथ आत्मीय भी है।

सम्पादकीय बहुत अच्छा लगा, जैसे गागर में सागर समा गया हो। चिंतन सृजन दिशावान हो सके तो योगदान का भारी

दायित्व उठा लेता है। सम्पादक जी आपकी सूझ-समझ वैसा ही संकेत दे रही है। आपकी उद्भावना बहुत जेनुइन है, विचारणीय है।

मेरा दावा है कि यह पत्रिकाओं की भीड़ में अपनी एक विशिष्ट और अद्वितीय पहचान बनायेगी। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

इस अंक में खासकर भारतीय रचनाकारों को स्थान मिला है, उनकी रचनाएँ "निकट" के माध्यम से भारतीयता की गंध बाहर बिखरेगी। मैंने बहुत जल्दी में पूरी सामग्री पर दृष्टि डाली तब भी वह बहुत समृद्ध और सार्थक लगी है- जैसे जीवन सारी आपदाएँ झेलकर भी अपराजित रहने के मंत्र जानता हो। "निकट" तीन पीढ़ियों को साथ लेकर चलने वाली पत्रिका होगी। वैसे भी हिन्दी पर यह आक्षेप लगता रहा है कि इसमें मटाधीशी चलती रही है और प्रतिभाओं को अवसर नहीं दिया जाता है।

उपर्युक्त धारणा को मिथ्या सिद्ध करने में "निकट" कामयाब होगी। यह पत्रिका फले-फूले और पाठकों की क्षुधा को शांत करती रहे.....

इन्हीं शुभकामनाओं के साथ.....

20 अगस्त, 2008

आपका हेमेन्द्र
(हेमेन्द्र कुमार यति)



■ साक्षात्कार : गोरखनाथ तिवारी

अपने प्रवेशांक से ही निकट की यह कोशिश थी कि वयोवृद्ध साहित्यकार पद्म भूषण विष्णु प्रभाकर का एक ताज़ा साक्षात्कार पाठकों तक पहुंचाए। इस संबंध में पत्राचार भी होता रहा लेकिन उनकी लगातार अस्वस्थता के कारण यह संभव नहीं हो पाया। 20 जून को मुझे उनकी जो चिट्ठी मिली उसके साथ यह साक्षात्कार भी मिला। कष्ट की बात यह है कि 30 जुलाई से उनकी याददाश्त भी चली गई। हर दस-पन्द्रह दिन में उनकी चिट्ठी मुझे जरूर मिल जाती थी। इधर 20 जून से उनका कोई पत्र नहीं मिला। ईश्वर करे यह उनकी आखिरी चिट्ठी न हो। वे स्वस्थ हों और फिर से अपने पाठकों को पत्र लिखने लगे।

(सम्पादक)



श्री विष्णु प्रभाकर जी से गोरखनाथ तिवारी की भेंटवार्ता

□ विष्णु प्रभाकर जी प्रणाम।

प्रणाम, तिवारी जी, आइये बैठिए।

□ आपके साहित्य साधना की प्रेरक शक्तियाँ क्या हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : मेरे साहित्य की प्रेरक शक्ति मनुष्य है। अपनी समस्त महानता और हीनता के साथ, अनेक कारणों से मेरा जीवन मनुष्य के विविध रूपों से एकाकार होता रहा और उसका प्रभाव मेरे चिंतन पर पड़ता रहा। कालांतर में वही भावना मेरे साहित्य की प्रेरक शक्ति बनी। त्रासदी में से ही मेरे साहित्य का जन्म हुआ।

□ जीवन और साहित्य के प्रति आपका क्या दृष्टिकोण है ?

विष्णु प्रभाकर जी : सह-अस्तित्व में मेरा पूर्ण विश्वास है। यही सह-अस्तित्व मानवता का आधार है। इसलिए गाँधी जी की अहिंसा में मेरी पूरी आस्था है। मैं मूलतः मानवतावादी हूँ अर्थात् उत्कृष्ट मानवता की खोज ही मेरा लक्ष्य है। वर्गहीन-अहिंसक- समाज किसी दिन स्थापित हो सकेगा या नहीं, लेकिन मैं मानता हूँ उसकी स्थापना के बिना मानवता का कल्याण नहीं है।

□ साहित्य क्या सामाजिक बदलाव ला सकता है ? क्रांति कर सकता है ?

विष्णु प्रभाकर जी : निश्चय ही ला सकता है। साहित्यकार की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इसमें मन पर पड़ने वाले प्रभाव ही सामाजिक बदलाव लाते हैं। इतिहास साक्षी है इस प्रक्रिया का। गीतों और कविताओं ने आज्ञादी की लड़ाई के समय जनता के दिल में कैसी ज्योति जगाई

थी इसके हम साक्षी हैं। सारे विश्व में इसके प्रमाण मिलेंगे। लेनिन ने रूस की क्रांति में टालस्टॉय की भूमिका को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। फ्रांस की क्रांति में वही योगदान रूसो और वाल्टेयर का है। अमेरिका में दासता को मिटाने में एलिजाबेथ स्टो के उपन्यास 'टॉम काका की कुटिया' के योगदान को अब्राहम लिंकन ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। साहित्यकार क्रांति की घोषणा करके क्रांति नहीं करता वह क्रांति की भूमिका तैयार करता है, क्रांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

□ महान लेखक कौन होता है ? महान रचना में क्या विशेषतायें होनी चाहिये ?

विष्णु प्रभाकर जी : सबके सुख-दुःख को जो अपना सुख-दुःख बना लेता है वही महान साहित्यकार होता है। व्यक्ति के सुख-दुःख, दर्द-पीड़ा, प्यार-व्यथा, वेदना को जो रचनाकार सबका सुख-दुःख, दर्द-पीड़ा, प्यार-व्यथा और वेदना बना देता है वही लेखक महान है। व्यक्ति समाज के यथार्थ से कटकर लेखक नहीं हो सकता। महान तो बिल्कुल नहीं।

□ कहानी, नाटक, उपन्यास आदि लिखने की प्रेरणा आपको जीवन और जगत से सीधे मिलती है या उसके प्रति बन चुके अपने किसी दृष्टिकोण से ?

विष्णु प्रभाकर जी : लिखने की इच्छा अनेक कारणों से बचपन में ही मेरे मन में पैदा हो गई थी। अनेक कारणों से मुझे वो जीवन जीना पड़ा जो मैं जीना नहीं चाहता था। उस वेदना ने मेरी कलम को धार दी और मैंने लिखना आरंभ

कर दिया। यह सब एक ही दिन में नहीं हो गया था, समय लगा था क्योंकि अंतर के द्वंद्व को अभिव्यक्ति का साधन बनाने में समय तो लगता ही है।

□ अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में संक्षेप में कुछ बताइये?

विष्णु प्रभाकर जी : प्रायः ही ऐसा होता है जो कुछ लिखना चाहता हूँ वह काफी समय तक मस्तिष्क में उमड़ता-घुमड़ता रहता है और जब उसके लिए वहाँ रुकना असंभव हो जाता है तभी वह कागज पर उतरता है। इस प्रक्रिया में जो परिवर्तन होने होते हैं वे प्रायः लेखनी हाथ में आने से पहले ही हो लेते हैं।

□ आपके इतने अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य क्या है ?

विष्णु प्रभाकर जी : मैंने सदा संयमित जीवन जिया है। खान-पान सादा रखा। कम खाना और सादा खाना ही गुर है मेरे स्वास्थ्य का। बीच में ऐसा समय भी आया जब मुझे विपरीत परिस्थितियों में रहना पड़ा, स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ा, लेकिन अपने संयम की प्रवृत्ति के कारण शीघ्र ही मैंने उस स्थिति पर विजय पा ली। मैं बाद में संयुक्त परिवार में रहा, सबका सहयोग मिला मुझे, चिंताओं में सहयोगी होने वाले मिले।

बहुत लंबे समय तक मैं प्रातःकाल 4-5 मील तक घूमता-दौड़ता रहा। चिकनाई और मिर्च से सदा दूर रहा। यथाशक्ति कम खाने का प्रयत्न करता रहा व्यसन कोई पाला नहीं। इस संयमित जीवन का श्रेय आर्य-समाज को कम नहीं जाता। मेरे मामा जी ने मुझे सिखाया था, '9 बजे सो जाओ और 4 बजे उठ जाओ'। कुछ देर पढ़ो और फिर घूमने चले जाओ शुरू में मुझे थोड़ी कठिनाई तो हुई। फिर तो वह नियम सा बन गया। उसके बाद मैंने मुड़कर नहीं देखा।

□ क्या आप ईश्वर में विश्वास करते हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : पहले निश्चय ही करता था। मेरे पिता जी किसी भी कर्मकांडी ब्राह्मण से कम नहीं थे। वहाँ से मैं अपने मामा जी के पास पंजाब चला गया। वह कट्टर आर्य समाजी थे। इसलिए ईश्वर से मुझे कहीं भी मुक्ति नहीं मिली, लेकिन इस अति संयमित जीवन की प्रतिक्रिया भी हुई। एक दिन मैंने सब कर्मकांड से मुक्ति पा ली और ईश्वर के प्रति भी मेरा कोई मोह नहीं रह गया। विशेषकर कुछ बड़े लोगों के पाखंडों को देखकर। आज भी इन

पाखंडों से हमें मुक्ति नहीं मिली है। इसलिए मेरे मन में ईश्वर के प्रति वह आस्था भी नहीं रही लेकिन जिनको है मैं उनका विरोध भी नहीं करता।

□ आपकी दृष्टि में जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

विष्णु प्रभाकर जी : मेरे विचार में जीवन के दो उद्देश्य होने चाहिए। पहला-तलाश, निरंतर तलाश, दूसरा-दूसरे के काम आने का निरंतर प्रयत्न करना।

□ देश-प्रेम के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : आजादी से पूर्व अधिकांश व्यक्ति देश-प्रेम के कारण ही नानारूप आंदोलनों में भाग लेते थे लेकिन आज हमारे नेताओं में वह देश प्रेम कहाँ ? जो है वह सत्ता का मोह है।

□ आप पर किन-किन साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा है ?

विष्णु प्रभाकर जी : मुझ पर सबसे अधिक प्रभाव प्रेमचंद, शरतचंद्र, जैनेंद्र, हाडी, टालस्टॉय, चैखव और गोर्की का पड़ा है, वैसे इस प्रश्न का उत्तर देना बड़ा कठिन है। जहाँ भी अच्छा दिखा उसे मैंने ग्रहण किया।

□ देश में बढ़ती हुई हिंसा का समाधान क्या है ?

विष्णु प्रभाकर जी : हिंसा की प्रवृत्ति इधर भारत एवं अनेक देशों में बढ़ी है। इसका समाधान 'अहम्' के विसर्जन में ही है, लेकिन इसका अर्थ स्वयं को मिटाना संयमित करना, 'स्व' और 'पर' को एक करना है। गाँधी जी का 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धांत कारगर हो सकता है, लेकिन आजकल तो इसका सब जगह अभाव नज़र आता है।

□ आप पर किन-किन विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा ?

विष्णु प्रभाकर जी : प्रारम्भ में गाँधी जी से प्रभावित हुआ, वीर-पूजा की भावना थी वह। मैं बच्चा ही तो था। 12 साल की आयु में आर्य समाज के प्रभाव में आया लेकिन फिर शीघ्र ही गाँधी जी हावी हो गये। बहुत से नेताओं को पास से देखा - जय प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया के संपर्क में आया। सांप्रदायिकता और साम्राज्यवाद का विरोध करने के कारण मैं रूस भी गया। साम्यवाद का अध्ययन किया। मार्क्स के प्रति भी श्रद्धा जागी, लेकिन गाँधी की अंगुली नहीं छूट पायी।

□ आतंकवाद के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : किसी को आतंकित करने का सबसे

आसान रास्ता है- आतंकवाद। बाकी तमाम रास्ते कर्म और निष्ठा पर आधारित हैं, वे दूसरों के लिए जीने में विश्वास करते हैं लेकिन बेरोजगारी, कुंठा, जनसंख्या वृद्धि, धार्मिक कट्टरता ये सब आतंकवाद को बढ़ावा देने वाले हैं।

□ **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का लेखक के लिए क्या अर्थ है ?**

विष्णु प्रभाकर जी : वह जो जीवन में 'गति' का है। जहाँ गति का अभाव है, वहाँ मृत्यु है, जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं है वहाँ साहित्य भी नहीं है, क्योंकि साहित्य मानव-आत्मा की बंधनहीन अभिव्यक्ति है।

□ **आज़ादी से पहले की राजनीति और आज की राजनीति में क्या अंतर है ?**

विष्णु प्रभाकर जी : मूलभूत अंतर है। तब हमारा एकमात्र लक्ष्य था- देश की स्वतंत्रता। उसी लक्ष्य के लिये दक्षिणपंथी, वामपंथी, मध्यममार्गी, क्रांतिकारी सब एक मंच पर आकर काम करते थे। तिलक, गाँधी, नेहरू, पटेल, सुभाष, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया सबके लक्ष्य के पीछे त्याग-तप और बलिदान की भावनायें थीं। आज एकमात्र 'सत्ता' प्रमुख हो गयी है। तब सेवा सर्वोपरि थी, आज 'सत्ता' सर्वोपरि है। सत्ता पक्ष हो या विरोधी पक्ष हो अंततः सबका लक्ष्य एक ही है। सब सत्ता के पुजारी हैं।

□ **क्या आज साहित्य का मूल्यांकन सही हो रहा है ?**

विष्णु प्रभाकर जी : मेरी दृष्टि में हमारे यहाँ सही अर्थों में आलोचक हैं ही नहीं। हर एक किसी न किसी वाद की अंगुली पकड़े हुए है। वह उसी दृष्टि से सोचता है। सबको अधिकार है अपनी दृष्टि से सोचने-समझने एवं परखने का लेकिन मेरा विचार है किसी तरह के वाद- विवाद से ऊपर उठकर भी हमें देखना चाहिए। 'स्व' को इतना महत्त्व नहीं देना चाहिए जितना 'पर' को।

□ **स्वतंत्र लेखक के रूप में आप जीवन-यापन कैसे कर पाये ?**

विष्णु प्रभाकर जी : सबसे पहले तो मैं इसका श्रेय अपने संयुक्त परिवार को देना चाहूँगा। दूसरा श्रेय यदि किसी को जाता है तो वह है - आर्य समाज और गाँधी जी। आर्य समाज से मतभेद होते हुए भी उसकी भावनाओं का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। गाँधी जी ने तो मेरे जीवन को ही पलट दिया, उनसे मैंने सचमुच जीना सीखा। मैंने

समाजवाद और साम्यवाद में मेरी दृष्टि में जो श्रेयकर है उसे सहर्ष स्वीकार किया। मैं सबके पास गया पर मन की स्लेट साफ करके गया इसलिए संघर्ष कभी नहीं हुआ। जो मेरे लिए वरण्य हो सकता था, उसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

□ **आपको सबसे अधिक सफलता किस विधा में प्राप्त हुई?**

विष्णु प्रभाकर जी : मूलतः मैं कहानीकार हूँ पर सबसे अधिक सफलता मुझे पहले रेडियो नाटकों के द्वारा मिली और उसके बाद शरतचंद्र की जीवनी 'आवारा मसीहा' के कारण मैं बहुत लोकप्रिय हुआ। अब लोगों को मेरी दो ही रचनायें याद रह गई हैं 'आवारा मसीहा' और 'धरती अब भी घूम रही है'। मैं सहमत नहीं हूँ लेकिन... रहने ही दीजिए इस विपदा को।

□ **आपकी पहली कहानी कब प्रकाशित हुई ?**

विष्णु प्रभाकर जी : मेरी पहली कहानी- 'दिवाली के दिन' हिंदी मिलाप समाचार पत्र में सन् 1931 में प्रकाशित हुई थी लेकिन वास्तव में मैंने सन् 1934 से नियमित रूप से लिखना शुरू किया। यही वर्ष मेरा प्रस्थान-बिंदु है।

□ **आप कथा-साहित्य के क्षेत्र से नाटक के क्षेत्र में कैसे आये ?**

विष्णु प्रभाकर जी : इसकी अद्भुत कहानी है। हमारे समय में पारसी थियेटर का महत्त्वपूर्ण स्थान था। मुख्य थियेटर ग्रुप के अतिरिक्त बहुत से शहरों में ड्रामेटिक क्लब खोले गये थे। हिसार में भी ऐसा ही एक क्लब था 'कृष्णा ड्रामेटिक क्लब' बड़े अच्छे नाटक प्रस्तुत किये उन्होंने। मेरे शुद्ध उच्चारण और शुद्ध हिंदी से वह बहुत प्रभावित हुए उन्होंने मुझे अभिनय के लिए आमंत्रित किया। 'कृष्णावतार' नाटक में मैंने राजा उग्रसेन की भूमिका निभाई। मुझे गोल्ड मेडल मिला। फिर तो मार्ग खुल गया। मैंने अपना क्लब खोला 'रामा ड्रामेटिक क्लब' और फिर कई नाटक प्रस्तुत किये। लंबी कहानी है, सन् 1938 में मेरा विवाह हुआ, तब तक मैं कहानी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। बारात में सर्वश्री जैनेंद्र कुमार, प्रभाकर माचवे, नेमीचंद्र जैन और यशपाल जैन जैसे लेखक सम्मिलित हुये थे। तभी 'हंस' पत्रिका का एकांकी अंक निकला था। खाने के समय साहित्य पर जो चर्चा छिड़ी तो

उस अंक पर चर्चा होनी ही थी। तब सहसा माचवे जी ने मुझेसे कहा-- 'विष्णु जी, आपकी कहानियों में वार्तालाप बहुत अच्छे होते हैं। आप एकांकी क्यों नहीं लिखते।' यही प्रश्न मेरे मन में बहुत दिनों तक घुमड़ता रहा और फिर मैंने एक नाटक लिखा-- 'हत्या के बाद' जो 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, उसकी चर्चा भी हुई। मैंने एक और नाटक लिखा-- 'माँ-बाप' जो 'वीणा' में छपा लेकिन फिर भी मैंने नाटक रेडियो के कारण ही लिखने शुरू किये। स्वाधीनता से पूर्व रेडियो पर उर्दू का आधिपत्य था। हिंदी वाले कभी-कभार ही वहाँ जाते थे, लेकिन स्वाधीनता के बाद रेडियो का पूरा स्टाफ पाकिस्तान चला गया। उनके स्थान पर आए हिंदी वाले। तभी कबाइलियों ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया था। तब जनता का मनोबल बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने लेखकों को वहाँ जाने को प्रोत्साहित किया, काफी लोग गये, मैं भी उनमें से एक था। बड़े रोमांचक दृश्य थे वहाँ के। जब मैं वहाँ से लौटा तो आकाशवाणी के ड्रामा-विभाग के अध्यक्ष श्री गोपाल दास ने मुझे बुलाकर कहा-- 'आपने कश्मीर में जो कुछ देखा उसे लेकर हमारे लिए एक रूपक लिखो।' लंबी कहानी है यह। यहाँ से शुरू हुआ मेरा रूपकों और ड्रामा से परिचय। कितना लिखा मैंने, 6वालयूम तो छपे हुये हैं मेरे पास। तो यह कहानी है मेरे नाटक लिखने की। मेरे अनेक नाटक व रूपक-- श्रीलंका, बर्मा, जापान, मारीशस और अदन आदि देशों में भी प्रसारित और मंचित हुए।

- आपने सफल कहानियाँ लिखी और एक से बढ़कर एक नाटक भी। फिर भी आप उपन्यास की ओर आकृष्ट हुए कृपया बतायें किस विशेषता के कारण आपने उसे अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया ?

विष्णु प्रभाकर जी : अपने को मुक्त करने का आनंद जितना उपन्यास के माध्यम से संभव हो सकता है उतना नाटक और कहानी के माध्यम से नहीं।

- उपन्यास 'निशिकांत' के नायक में मुझे आपका प्रतिबिंब स्पष्ट देखने को मिलता है क्या कहना है आपको ?

विष्णु प्रभाकर जी : मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। अब आप जो दंड दें उसे भी सहर्ष स्वीकार करूँगा मैं।

- आपके साहित्य पर कहाँ-कहाँ शोध हुआ है ?

विष्णु प्रभाकर जी : जहाँ तक मैं जानता हूँ विदेशों में तो

सोवियत-रूस और चैकोस्लोवाकिया में काम हुआ है। देश में तो प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में शोध प्रबंध लिखे गये। उत्तर प्रदेश से केरल तक एक लंबी सूची है।

- आपको कौन-कौन से पुरस्कार प्राप्त हुये ?

विष्णु प्रभाकर जी : लंबी सूची है फिर भी कुछ नाम दे देना ठीक रहेगा -

- स्व. दशरथमल सिंघवी जी की स्मृति में राष्ट्रीय एकता पुरस्कार सन् 1980 में।
- 'आवारा मसीहा' पर तुलसी पुरस्कार 1975-76।
- 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' 1976, दो सप्ताह का सोवियत-रूस के भ्रमण का निमंत्रण।
- 'हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद' की साहित्य वाचस्पति की मानद उपाधि से सम्मानित।
- उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 1987 में 'संस्थान-सम्मान' से सम्मानित।
- हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा 'शलाका सम्मान' से सम्मानित।
- भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'सत्ता के आर-पार' नाटक के लिए मूर्ति देवी पुरस्कार से सम्मानित 1985 में।
- भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता द्वारा उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' के लिए 1992 में 'हिंदी भाषा साहित्य पुरस्कार'।
- साहित्य अकादमी द्वारा 1993 में 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास पुरस्कृत।
- नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1975 में 'ताम्रपत्र'।
- उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'धरती अब भी घूम रही है' और उपन्यास 'स्वप्नमयी' पुरस्कृत।
- अंतर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिताओं में 'शरीर से परे' तथा 'गृहस्थी' कहानियाँ पुरस्कृत।
- उत्तर प्रदेश संस्थान द्वारा महात्मा गाँधी जीवन दर्शन एवं साहित्य सम्मान-1995।
- हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन यायावरी पुरस्कार'- 1995।
- बिहार राज्य हिंदी अकादमी द्वारा 'राजेंद्र प्रसाद शिखर सम्मान' - 1999 में सम्मानित।
- वर्धमान विश्वविद्यालय से डी.लिट्. की मानद उपाधि सन् 1993 में प्राप्त की।

- परंपरा संस्था द्वारा 'परंपरा विशिष्ट सम्मान' अगस्त 2003 में।
 - इटावा हिंदी सेवा निधि द्वारा 'जनवाणी पुरस्कार' नवंबर 2003।
 - महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत - 26जनवरी 2004 में।
 - प्रभात शास्त्री सम्मान हिंदी साहित्य सम्मेलन मार्च 2005 में।
 - यशपाल जैन साहित्य पुरस्कार- 2006
 - साहित्य अकादमी द्वारा महत्तर सदस्यता प्रदान 2006 आदि।
- आज की पत्रकारिता के बारे में आप क्या सोचते हैं ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** हमारे समय में पत्रकारिता एक मिशन थी। आज वह एक व्यवसाय बनकर रह गई है। व्यवसाय तो लाभ-हानि का खेल है। उस युग के पत्रकारों ने देश की आजादी के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। सर्वश्री बाबूराव विष्णु पराडकर और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकारों ने पत्रकारिता के मर्म को समझा था। आज जैसे इस भावना का लोप हो गया। अब पत्रकारिता में चटपटापन और प्रचार घुस गया है। अवसरवादिता ने अपनी जड़ें जमा ली हैं।
- हिंदी साहित्य जगत में प्रायः यह कहा जाता है आप विवादों से दूर रहते हैं ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** मैं जो हूँ वह हूँ। विवादों में नहीं पड़ता मैं। मेरी दृष्टि समग्र दृष्टि है। मैं सब कहीं यह देखना चाहता हूँ कि इसमें कहाँ तक सत्य को खोजने की प्रवृत्ति है।
- आपके लेखन का मूल स्वर क्या है ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** मेरे लेखन का मूल स्वर मानव और मानवता की खोज है और है हर प्रकार के शोषण से मुक्ति की भावना, मनुष्य होना चाहता हूँ, मनुष्य की तलाश है मुझे।
- आज समाज में सांप्रदायिक तनाव और सामाजिक विद्वेष का जो माहौल है इस समय गाँधी जी जीवित होते तो क्या करते?
- विष्णु प्रभाकर जी :** गाँधी जी निश्चित रूप से अयोध्या में जा बैठते और 6 दिसंबर को बाबरी मस्जिद ढहाये जाने की जो घटना घटी उसे अपने जीते जी नहीं घटने देते।
- साहित्य और सामान्य व्यक्ति के बीच की दूरी क्या पट चुकी है?
- विष्णु प्रभाकर जी :** साहित्य और सामान्य व्यक्ति के बीच की दूरी और बढ़ी है। सब लोग शिक्षित कहाँ हैं। हिंदी भाषी लोगों में कितने शिक्षित हैं ? उनमें से भी साहित्य से कितने जुड़े हैं। दूरदर्शन के कारण स्थिति और जटिल हुई है। एक विशेष प्रकार का धारावाहिक साहित्य हम पर हावी होता जा रहा है।
- आप अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना किसे मानते हैं ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** मैं स्वयं दिक्भ्रमित हूँ। सुधि पाठकों को और जनता को मेरी दो रचनाओं के ही नाम याद हैं- 'आवारा मसीहा' और 'धरती अब भी घूम रही है'। मैं यहीं नहीं रुकना चाहता। मैं निश्चय ही बड़ा साहित्यकार नहीं हूँ फिर भी मेरी अपनी दृष्टि तो है ही। खैर छोड़िये मैं इस विवाद में नहीं उलझना चाहता।
- आपको किस कृति को लिखकर सबसे अधिक संतोष हुआ ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** कहने को तो मैं कह सकता हूँ 'आवारा मसीहा' लेकिन वह निखूट सत्य नहीं होगा। उसके बाद मैंने 'अर्द्धनारीश्वर' उपन्यास भी लिखा जो साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ। इसलिए मैं कहना चाहूँगा मैं वह रचना अभी लिखना चाहता हूँ जिससे आप और मैं दोनों संतुष्ट हों।
- क्या आप समझते हैं कि आपके लेखन के प्रति आलोचकों ने न्याय किया है ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** मैं अपने को बड़ा लेखक नहीं मानता। आलोचकों ने मेरी आलोचना भी की, प्रशंसा भी। लेकिन जो वाद को लेकर विवाद में पड़ते हैं उनसे मुझे डर लगता है फिर भी ऐसे लोग हैं जिन्होंने तटस्थ होकर लिखा है जैसे- - ओम प्रकाश दीपक और देवीशंकर अवस्थी आदि।
- आपने किन-किन देशों का भ्रमण किया है ?
- विष्णु प्रभाकर जी :** मैं सोवियत रूस, चेकोस्लोवाकिया, नेपाल, मॉरीशस, वियतनाम, बर्मा, थाइलैंड, कंपूचिया, मलाया, सिंगापुर गया हूँ। सोवियत रूस और चेकोस्लोवाकिया अब कई देशों में बंट गए हैं। चेकोस्लोवाकिया जाते समय जर्मनी के एक हवाई-अड्डे पर

भी कई घंटे रुका हूँ और स्लोवाकिया में डेन्यूब नदी के किनारे खड़े होकर उस पार हंगरी देश के दर्शन भी किये हैं।

□ क्या आप दूरदर्शन से संतुष्ट हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : दूरदर्शन से मेरा गहरा संबंध रहा है। बहुत कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं मैंने लेकिन आज के समय में मेरी गति वहाँ नहीं है। मैं दूरदर्शन नहीं देखता केवल रेडियो सुनता हूँ वह भी नाटक और समाचारों के लिए।

□ आप किसे अपनी प्रसिद्ध कहानी मानते हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : 'धरती अब भी घूम रही है' मेरी कहानी बहुत प्रसिद्ध हो गई है। यद्यपि कुछ आलोचकों ने उसे श्रेष्ठ कहानी नहीं माना फिर भी मुझे मेरे पाठक इसी कहानी और शरतचंद्र की जीवनी 'आवारा मसीहा' से ही जानते हैं। मेरी दृष्टि में मैंने और भी अच्छी कहानियाँ लिखी हैं। उसका एक संग्रह आने वाला है।

□ आपके कथा-साहित्य की मूल संवेदना क्या है ?

विष्णु प्रभाकर जी : मेरे साहित्य का मूल स्वर शोषित वर्ग की मुक्ति है नारी हो या तथाकथित दलित वर्ग। मैं शोषण का विरोध करता हूँ। सामाजिक तथा आर्थिक समानता का पक्षधर हूँ। इसलिए मेरी रचनाओं के पात्र इसी संघर्ष में रत दिखाई देते हैं।

□ आपने प्रायः सभी विधाओं में लिखा है, पर आप स्वयं अपने लिए किस विधा को सहज और सुविधाजनक मानते हैं ?

विष्णु प्रभाकर जी : जैसा मैं कह चुका हूँ जब मैंने लिखना शुरू किया तो सबसे पहले कविताएं लिखी, लेकिन जल्दी ही मेरा मोह-भंग हो गया और मैं गद्य की ओर मुड़ा, कहानी लिखने लगा। आज मुझे एकांकीकार और जीवनीकार के रूप में ज्यादा मानते हैं लोग, लेकिन मैं अपने को मूलतः कहानीकार ही मानता हूँ।

□ जीवन के इस पहर को आप किस ढंग से जीना चाहेंगे ?

विष्णु प्रभाकर जी : निरंतर लिखते हुये, जब तक जीवन है, मैं लिखता ही रहूँगा।

□ हिंदी पाठकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे ?

विष्णु प्रभाकर जी : मैं तो उनसे इतना ही कहना चाहूँगा कि अपने को जानो, अपने दीपक आप बनो निरंतर आगे बढ़ते रहो, संघर्ष ही तो जीवन है। जो चलता रहता है उसकी जंघाओं में फूल खिलते हैं, यह वैदिक ऋषि ने कहा था। आज भी यह, उतना ही तो सत्य है। इसलिये 'चरैवेति, चरैवति'।

'जोदि तोर डाक सुने केऊ न आशे, तबे एकला चलो रे; एकला चलो रे'

(यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई नहीं, आता तो अकेला ही चल) ◆

(संकल्प पत्रिका से आभार)



गली रंगरेजान!

अगर उसे जल्दी न हो तो वो आगन्तुक की जन्मपत्री तक माँग सकता है और न मिलने पर गालियाँ दे सकता है, कॉलर पकड़ कर झिंझोड़ सकता है और दो-चार थप्पड़ रसीद करता है ! ऐसी स्थिति आने पर और गली वासी भी उसकी मदद करेंगे। सवाल आखिर गली और उसमें रहने वालों की सुरक्षा का है, माताओं - बहनों की इज्जत का है। कोई उचक्का ऐसे कैसे गली में घुस आएगा ?



जन्म : मार्च 7, 1947

शिक्षा : एम. ए अंग्रेजी साहित्य, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर - राजस्थान विश्व-विद्यालय लगभग 22 वर्ष तक राजस्थान शिक्षा सेवा के अंतर्गत विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन के बाद स्वैच्छिक निवृत्ति।

स्वतंत्र लेखन : 1995 से

रचनाएँ : देश की प्रमुख पत्र पत्रिकाओं - धर्मयुग, हंस, इंडिया टुडे (हिन्दी) अक्षर पर्व, कथादेश, कथाक्रम, गूँज राजस्थान पत्रिका, नवज्योति, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता आदि में व्यंग्य, कहानियाँ रिपोर्ताज, समीक्षाएँ आदि प्रकाशित। कहानी रिमोट कंट्रोल पर कथाक्रम - 2001 पुरस्कार, 6 कहानियाँ टी.वी के लिए अनुबंधित, आकाशवाणी से प्रसारित। व्यंग्य जर्मन भाषा में व कहानियाँ मराठी, पंजाबी, गुजराती व उड़िया में अनूदित। राष्ट्रीय सहारा में नियमित स्तंभ - 'अंतिम सच'

कहानी-संग्रह : आखिरी नाम अल्लाह का, जिन दिन देखे वे कुसुम

व्यंग्य संग्रह : खट्टे.... खारी.... खुरखुरे....

स्त्री-विमर्श : खिड़की के पास वाली जगह, औरत : अपने लिए

विधि : रंग गयो गुजरात

संपर्क : पोस्ट बैग नंबर - 6502, एस.के. एस ज्ञान मंदिर, भानपुरा - 458775, मंदसौर - म. प्र.

हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखाने के और ! सड़कों-गलियों के नाम, पट पर कुछ और होते हैं, लोगों की जबान पर कुछ और। जयप्रकाश नारायण मार्ग को कोई नहीं जानता : गली रंगरेजान को कौन नहीं जानता!

यह है गली रंगरेजान !

यहाँ कपड़े रंगे जाते हैं। पुराना कपड़ा नया रंगने से फिर चटख लगने लगता है। कल जो पीला था, आज नीला है। जो सफेद था, लाल है। गुलाबी, गेरूआ है। नित नये रंग बदलते हैं। कभी नारंगी रंग का जोर उमड़ा, तो ज्यादातर कपड़े नारंगी! कभी नीले के भाग जागे, तो सब नीला। ये रंगों की माया है, चतुर कारीगरों का कमाल है। ये रंग और कलफ लगाकर लते का महल खड़ा कर सकते हैं।

पप्पू जी ने पैर का पंजा जमीन पर टिका साइकिल रोकी और अपनी भँवें प्रश्नवाचक मुद्रा में उठा दी। जवाबी कार्यवाही रंगे कपड़ों की चौकसी करने वाले बारह साला छोकरे ने की। उसने खीसें निपोर दी और पतली-सी संटी के सहारे गीले-रंगे दुपट्टे एक तरफ कर दिये। पप्पू जी गली रंगरेजान में दाखिल हुए। अपने आप में यह उतना ही साहसिक अभियान था, जितना सिक्ंदर का हिंदुकुश में दाखिल होना। कदम-कदम पर बाधाएँ थी, अनिश्चितताएँ थीं और थे आक्रामक

अजनबी ! ऐसे दुस्साहसपूर्ण अभियान पर निकलने वाले वो अकेले साहसिक भी नहीं थे। और भी कई थे, जो गली रंगरेजान के तिलिस्म को तोड़ने के चक्कर में गली के चक्कर काट रहे थे। मजे की बात यह है कि हवा में लहराते रंग-बिरंगे कपड़े और रंग के बड़े-बड़े कूड़े देखकर भी कुछ लोग जरूर पूछते हैं,

“गली रंगरेजान यही है ?”

एक-दो बार पूछने पर तो कोई ध्यान ही नहीं देता। किसी का रास्ता रोक, कंधा पकड़ कर जब यही प्रश्न दुहराया-तिहराया जाता है, तब कहीं जाकर उत्तर मिलता है। वह भी इस बात पर निर्भर करता है कि उत्तर देने वाला कितनी जल्दी में है ! अगर बहुत जल्दी में है तो “हाँ” कहकर आगे निकल जायेगा। अगर जल्दी में है, तो रूक कर प्रश्नकर्ता को अच्छी तरह घूरता है, फिर पूछता है, किससे मिलना है, क्या काम है, आप कौन है, वगैरह वगैरह ! जल्दी में है, इसलिए प्रश्नकर्ता की औकात और इरादों के बारे में तसल्ली कर, कह देता है।

“हाँ, यही है गली रंगरेजान”।

अगर उसे जल्दी न हो तो वो आगन्तुक की जन्मपत्री तक माँग सकता है और न मिलने पर गालियाँ दे सकता है, कॉलर पकड़ कर झिंझोड़ सकता है और दो-चार थप्पड़ रसीद करता है ! ऐसी



स्थिति आने पर अन्य गली वासी भी उसकी मदद करेंगे। सवाल आखिर गली और उसमें रहने वालों की सुरक्षा का है, माताओं - बहनों की इज्जत का है। कोई उचक्का ऐसे कैसे गली में घुस आएगा ?

आहा ये अपने घर, अपनी गली के प्रति असाधारण ममत्व रखने वाले कर्तव्यपरायण नागरिक! स्त्रियों की इज्जत के प्रति इतने जागरूक! हर अवसर पर गालियों का मुक्त वितरण ! ये अनेकता में एकता ! ये असहिष्णुता । ये सर्वधर्म क्रुद्ध भाव !

यही है गली रंगरेजान!

संकरी गली, लहराती-बलखाती इधर-उधर मुड़ती अंततः दूसरी ओर बड़ी सड़क से जा मिलती है। दोनों तरफ तीन मंजिले - चार मंजिले मकान, ऊँचे चबूतरे और उन चबूतरों पर जमे सब्जी

वाले, चाट वाले, मिठाई वाले और न जाने क्या-क्या वाले। गधा गाड़ी और सिर पर खोंमचा रखे फेरी वाले भी आ जा रहे हैं। कान का मैल निकालने वाले, तीतर-बटेर लड़वाने वाले, खाट बुनने वाले, बर्तनों पर कलई करने वाले, साँप-बिच्छू का जहर उतारने वाले और मालिश करने वाले भी इस प्रवाह में शामिल हैं। वे आ-जा रहे हैं, इस तथ्य से बिल्कुल बेखौफ - बेअसर कि यह गली रंगरेजान है। वो रोज के आने-जाने वाले हैं, उन्हें इस गली के खतरे मालूम हैं। ... मजा तब आता है जब कोई अनामंत्रित अजनबी इस गली में दाखिल होता है और चुस्त चूड़ीदार पाजामे पर लाला घेरदार अंगरखा पहने कोई रंगरेजान कलफ मिले रंग का कूंडा गली में उलट देती है। अजनबी इस अचानक हुई रंग

वर्षा का विश्लेषण करता है ! क्या है आज ? होली या रंग-पंचमी ! शादी ब्याह का मौसम यानि कि सहालगें भी नहीं है। अभी तो देवता सो रहे हैं। फिर ये रंगबाजी क्यों ? वो अपने रंग से सरोबार कपड़े देखता है और इस बदतमीजी पर दहाड़ना शुरू करता है। सारे रंगरेज अपने-अपने दड़बों से बाहर आ जाते हैं। एक दूसरे की धर्म-जाति और माँ-बहनों की शान में कसीदे पढ़े जाने लगते हैं। वो कौआरोर शुरू होती है कि कौए अपने-अपने घोंसलों में जा दुबकते हैं। शीघ्र ही मामला अल्पंख्यकों के अधिकारों की तरफ सरकने लगता है। दो समुदायों के बीच तनाव के आसार नज़र आने लगते हैं।

इतने में श्रीमती नारंगी देवी हायर सेकेण्डरी गर्ल्स स्कूल की छुट्टी हो जाती है। सारी गली छोटी-बड़ी, लगातार बतियाती चकर-चकर करती लड़कियों से भर जाती है। दोनों समुदाय पुराना तनाव भूल, नये तनाव की गिरफ्त में आ जाते हैं और हालात सामान्य !

सामान्य न होंगे तो क्या होंगे ? ये रोजमर्रा के कार्यक्रम हैं, घटते रहते हैं, जिन्दगी चलती रहती है। कारण रंग वर्षा नहीं तो कुछ और होगा ! बाकी घटनाक्रम थोड़े फेरबदल के साथ, वही रहता है। आखिर इस गली में केवल रंगरेज ही तो नहीं रहते ! सदियों पुराने, हवेलीनुमा तीन-तीन, चार-चार मंजिले मकान भी तो हैं और उनमें रहने वाले हर तरह के गर्म-सर्द मिजाज के लोग। अब छत पर लेटा धूप सेंकता, वृद्ध कहाँ थूके ? रोटी खाकर कहाँ कुल्ला करे ? रसोई में काम करती बहू छिलके कहाँ फेंके ? सब कुछ "त्वदीयम वस्तु गौविदमः तुभ्यमेव समर्पते" के तटस्थ भाव से गली

को समर्पित कर दिया जाता है। अतः उस गली से निकलना और सकुशल परली सड़क तक पहुँच जाना, किसी उफनती पहाड़ी नदी के उद्गम से संगम तक की यात्रा करने जैसा ही साहसिक अभियान है। ये तो अखबार वालों का सरासर दुच्चापन है कि कोई रंग बिरंगी आरामदेह खबर की फूली-फूली नाव में बैठकर नदी

हंडिया ! तेज मिर्च- मसाले की चाट के बाद, गुलाब जामुन कैसे भी हों, बिक जाते थे। साइकिल पर सवार पप्पू जी ने मनसुख की टोकरी की विपरीत दिशा में बदन झुकाकर संतुलन बनाया। इस सरकसी कमाल में उनका टखना रास्ते में बैठी भैंस के सींग से टकरा गया। यूँ तो भैंस समझदार थी, अलबेले साइकिल

स्कूल के साथ एक कोचिंग स्कूल की अनिवार्यता के चलते ये कोचिंग स्कूल परोपजीवी पौधों की तरह हर जगह उगे नज़र आते थे। आठवीं फेल को मैट्रिक और मैट्रिक फेल को बी.ए पास करवा देने का मधुर आश्वासन इनके नामपट्ट की विशेषता थी। इसी वक्त कोचिंग स्कूल की एक पारी खत्म हुई और सारी गली मैट्रिक, बी.ए. पास करने की इच्छुक लड़कियों से पट गई। चबूतरों पर रोजाना के दर्शनार्थी आ गये। कुछ मनचले मौका ताक कर, छोटे से पत्थर पर लपेट कर प्रेम-पत्र किसी भी लड़की पर फेंक देते थे। अगर यह प्रक्षेपणास्त्र किसी सुरक्षित जगह पर गिरता, जैसे वक्ष के ठीक मध्य भाग में, तो लुढ़क कर स्वतः अंगिया में चला जाता था।

लड़की भी चुपचाप आगे निकल जाती थी। घर जाकर, तसल्ली से, एकान्त में बैठकर पत्र पढ़ने के लिये। यही प्रेम-पत्र लिपटा पत्थर अगर चुन्नी या सिर और किताबों पर गिरता तो वह ऐसे छिटकती थी जैसे पत्थर नहीं जलता हुआ अंगार आ गिरा हो।

की यात्रा करे, तो दनादन उसके फोटो पर फोटो छापेंगे ! पप्पू जी रोज ही अपनी टुट्टी साइकिल पर ये अभियान सम्पन्न करते हैं और कोई साला 'सर्टिफिकेट' तक नहीं देता ! उनके विचार से, इस गली को सकुशल, सदेह, सवस्त्र (स्वच्छ) और स-हृदय पार करने वाले सूरमा को 'वर्ल्ड क्लास साइकिलिस्ट' का तमगा मिलना चाहिए।

मातृवत् परदारेषु

“हट के भैय्या....सँभाल के लल्लन.... बच के अम्माँ.....ठहर के बिट्टी.....” मनसुख चाट वाला ऊँची आवाज़ में, राह में, आने वाली आपदाओं- विपदाओं को आगाह करता चल रहा था। उसके सिर पर बड़ी-सी टोकरी थी। उस बड़ी-सी टोकरी का व्यास खपच्चियों और प्लास्टिक के टुकड़ों के सहारे और बड़ा कर लिया गया था। उसमें गोल-गप्पे, समोसे-कचौड़ी, दही बड़े और न जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम भरा था। वो एक हाथ से टोकरी सँभाले था और दूसरे हाथ में थी स्टील की छोटी टंकी। गोलगप्पों का पानी। कंधे पर थी गुलाब जामुन की

सवार को देखकर मुँह दाईं ओर मोड़ लिया था। पर सींगों का क्या करती ? पप्पू जी सी SSS सी SSS करते सीधे चले तो साइकिल कुत्ते की पूँछ पर चढ़ा दी। कुत्ता भैंस की तरह बुद्धिजीवी नहीं था। दरअसल खासा घोंचू था। खुद तो मुँह उठाए चबूतरे पर बैठे बच्चे का रोटी कुतरना देख रहा था और अपनी पूँछ आधे रास्ते तक बिछा रखी थी। पूँछ पर से साइकिल गुजरने से वह इतनी जोर से चिंचियाया कि बच्चे के हाथ से रोटी छूट गई। कुत्ते ने चिंचियाना स्थगित कर रोटी दाब ली और नाली में बैठकर आराम से खाने लगा। चिंचियाने का कार्यक्रम बच्चे ने लपक लिया। कुत्ते पर ज़रा भी असर नहीं हुआ। वो जानता था, उसके दाँतों में दबी रोटी और नेताओं के हाथ लगा माल देश का सर्वोच्च न्यायालय भी नहीं निकलवा सकता।

पप्पू जी साइकिल को सर्पिली चाल से चलाते गली पार करने लगे। झपकी लेती भैंसें, ऑन ड्यूटी ऊँघते कुत्ते, बेवज़ह घूमते बच्चे, बूढ़े और जवानों को बचाता हुआ। बस थोड़ी दूर और। आगे लड़कियों का कोचिंग स्कूल था। हर

लड़की भी चुपचाप आगे निकल जाती थी। घर जाकर, तसल्ली से, एकान्त में बैठकर पत्र पढ़ने के लिये। यही प्रेम-पत्र लिपटा पत्थर अगर चुन्नी या सिर और किताबों पर गिरता तो वह ऐसे छिटकती थी जैसे पत्थर नहीं जलता हुआ अंगार आ गिरा हो।

“गधे है साले !” पप्पू ने मुस्करा कर सोचा। क्या तीर मारा होगा इस दो इंच के कागज़ पर। वही घिसा-पिटा.....आई लव यू ! सालों ! उमर बीत जायेगी और कुछ हाथ पल्ले नहीं लगेगा। ये लड़कियाँ छम-छम करती ससुराल चल देंगी और तुम उल्लू के पट्टे ताकते रह जाओगे। पहले तो प्रेम-पत्र सहित पत्थर का सही निशाना दुश्वार ! फिर जवाब गोल। छह महीने इसी तरह निकल जाएंगे। किसी तरह बात आगे बढ़ी और कहीं मिलने को तैयार हुई तो छोटी बहन या सहेली को दुमछल्ला बनाकर ज़रूर लायेगी। साल गुज़र जायेगा और बात



रत्ती भर भी आगे नहीं खिसकेगी। ये सब चूतियापा मन्नु के बस का नहीं ! उसकी टेक्नीक ज़रा हट के है। वो दूर के रिश्ते की बहनों - भाभियों का दीवाना है। डायरी में बाकायदा उनके नाम - पते और पति का हुलिया दर्ज कर रखा है। अपने-अपने पति से दुखी भारतीय नारियाँ देवों पर जल्दी मेहरबान हो जाती है। - यह पप्पू जी का अनुभव है। वो उनका कानूनी - गैर कानूनी, हर काम कर देता है। बदले में ज्यादा कुछ नहीं ! वही सब, जो वैसे भी तंग आकर वो किसी न किसी को सौंप ही देती है। । ऐसे क्या लाल जड़े हैं !

मन्नु के दिमागी घोड़े और उनकी टुटही हरक्वूलिस साइकिल विपरीत गति से दौड़ती है। घोड़े तेज़ रफ्तार और साइकिल संकरी गली में अनेकानेक अतिक्रमणों की बाधा तोड़, मंथर गति से तय करती हुई।

आखिर कूच-ए-जाना आ ही गया। बड़ी सख्त चट्टान है। पप्पू जी न जाने कब से हलकान हो रहे हैं, मगर वो पिघल नहीं रही। माना खूबसूरत है, जहीन है। मगर है तो दुखी भारतीय नारी ही। देखें ! कब तक अडिग रहती है ! कहीं न कहीं, कोई न कोई कमजोरी दरार बनकर उभरेगी और वही धंस पड़ेगा पप्पू जी सो कोशिश जारी है, लगे पड़े है। अरे ! आज तो बड़ी भीड़-भाड़ नज़र आ रही है। माज़रा क्या है ? ओप्फोह ! उसे तो याद ही नहीं रहा, यहाँ धर्मशाला जैसी कोई चीज़ है ! वहाँ हर महीने-पन्द्रह दिन में एक “पहुँचे हुए” (पप्पू का बहुत मन करता है, पूछने का ... कहाँ पहुँचे गुरु ?) महात्मा ‘सत्संग’ करने पधारते है। इस समय सारी गली में चप्पलें बिखरी पड़ी है। लोकप्रिय फिल्मी गानों की तर्ज पर भजन चल रहे हैं। ...

पर्वत के ऊपर क्या है पर्वत के ऊपर

पर्वत पर मंदिर उसका मंदिर में भैया मेरी, उसके लिये मैं तज दूँ संसार को SSS

धर्मशाला के पास संकरी गली। इतनी संकरी कि तीन आदमी साथ नहीं चल सकते ! उस गली के छोर का आखिरी मकान ! उसने धीरे से दरवाज़ा खटखटाया। एक बार ... दो बार सो रही है क्या ? उसने फिर हाथ उठाया ही था कि अचानक दरवाज़ा खुल गया।

“नमस्ते भाभी”

“नमस्ते, आओ।”

“कैसा है बच्चू ?”

“अभी तो बुखार है !”

“दवा लानी है ?”

“नहीं ! पहले वाली ही खत्म नहीं हुई !”

दोनों अन्दर आ गये ! नन्हा-सा आँगन ! एक ओर दो कमरे दूसरी ओर रसोई, गुसलखाना और शौचालय, बस्स ! कमरे के अन्दर आकर अंजू ने बैठने के लिये पीढ़ा सरकाया ! एकमात्र खाट पर बच्चू सो रहा था। रात में ये दोनों कहाँ सोते होंगे ? और बरसात में ? ये शहर का निचला इलाका है। मकान सस्ते मिलते हैं क्योंकि ज़रा-सी बरसात होते ही घरों में पानी भर जाता है।

“पानी”, अंजू पानी का गिलास लिये खड़ी थी।

“ओह !” एक साँस में पानी पी लिया पप्पू ने। गिलास लौटाते हुए पूछा “भैया नहीं आये ?”

“दोपहर के दो बजे भैया कब आते हैं ?” अंजू ने मुस्करा कर पूछा ! मुस्कराते वक्त अंजू के गालों में गड्डे पड़ते हैं और होंठ थोड़े से टेढ़े हो जाते

है। यही डूब जाता है पप्पू।

“आप भी बैठो न !”

“और सुनाओ ।” दूसरा पीढ़ा खींचकर अंजू भी बैठ गई। पप्पू जी ध्यान से अपना दायाँ हाथ देख रहे थे।

“आज हस्त-रेखा विज्ञान पर एक किताब पढ़ रहा था !”

“सच्च ! जरा मेरा हाथ देखो।” आँचल से हाथ रगड़ अंजू ने उसके सामने फैला दिया।

हस्तरेखा विज्ञान वो फंदा है जिसमें चतुर से चतुर चिड़िया फँस जाती है। पप्पू जी ने सोचा और तृप्ति की मुस्कान बिखेर कर बोले, “दायाँ नहीं बायाँ !” अंजू ने बायाँ हाथ फैला दिया। पप्पू ने बड़ी श्रद्धा और ललक से थाम लिया। पहले बायाँ हाथ देखा, फिर दायाँ ! कलाइयों से दोनों हाथ मिला, अंजुरी बाँध कर देखा। अंगुलियों के पोर देखे। दोनों हाथ उलट-पुलट कर देखे, दबाकर देखे, जब देखने को कुछ शेष नहीं रह गया तो धीरे से चूम कर हाथ छोड़ दिये।

“भाभी, आपके हाथ में राजयोग है।”

खिलखिला कर हँस पड़ी अंजू । ऐसे भीषण अभाव और हाड़-तोड़ मेहनत के बीच वही हँस सकता है जो निरन्तर हँसने के अवसर की तलाश में रहता हो। चकित रह गया पप्पू।

“आप मज्जाक समझ रही है ? देखिये, यह जो रेखा है,” उसने अंजू का बायाँ हाथ धीरे से दबाया, “सीधे मध्यमा से मिलती है। यही भाग्य रेखा है। कितनी सीधी और स्पष्ट। बहुत कम हाथों में यह रेखा इतनी सीधी, स्पष्ट और गहरी होती है। आपके भाग्य में निश्चय ही राजयोग है।”

“राजयोग माने ?”

“राजयोग माने।” कुछ सोच में पड़ गये पप्पू जी। रानी बनेगी कहना तो व्यर्थ होगा, “आपको सरकारी नौकरी मिलेगी।”

“तुम भी क्या दूर की हाँकते हो।”

“हाँक मैं नहीं रहा, आपके हाथ की रेखाएं ही ऐसा बोल रही हैं। अच्छा! जब सरकारी नौकरी मिले, तो इस गुलाम को मत भूल जाना। मेरा इनाम”.... दरवाजा खड़का । धत्त तेरे की ! कौन है इस भरी दुपहरिया में ! अंजू ने दरवाजा खोला। पतिदेव खड़े थे। पप्पू ने लपक कर साइकिल थामी और भैया के पैर छुए।

“कब आए ?”

“बस, अभी दो-चार मिनट ही हुए होंगे।”

सुदर्शन अन्दर आये।

“बच्चू कैसा है।” अंजू से पूछा।

“अभी बुखार है, सो रहा है। दवा दे दी थी।” वो पति के लिये पानी लाने चली गई। सुदर्शन ने कपड़े बदले, पानी पिया और बच्चू के सिरहाने बैठ गये।

“आज जल्दी कैसे आ गये।” अंजू ने पूछा।

“बच्चू की बीमारी की कहकर छुट्टी ले आया। वैसे भी आखिरी घण्टा खाली था। पप्पू बैठा कुढ़ रहा था। सारा रण कौशल बेकार चला गया।”

“मैं चाय बनाती हूँ ।” अंजू रसोई में जाकर स्टोव जलाने लगी। सामने कैलेण्डर टँगा था। आज इक्कीस तारीख है। पूरे दस दिन और ! बाहर पप्पू और पति की सतही बातचीत चल रही थी। क्या करे इन ज्योतिषाचार्य का ? राजयोग बता रहे हैं ! चाय के साथ कुछ ‘वाय’ का भी इंतजाम करें। छोड़ों भी ! यह तो पेशेवर गोताखोर है। अंजू की

भाभी के दूर के रिश्ते के भाई है। उस रिश्ते की नाजुक डोर के सहारे, पतंग की तरह जब-तब उसके आंगन में टपक पड़ते हैं। उधर सुदर्शन की भी कोई रिश्तेदारी निकलती थी पप्पू जी से ! सो निबाहना पड़ रहा था। मायके में वह छोटी भाभी के साथ रहती थी और अम्माँ - बाबू बड़े भैया के पास ! ऐसा ही छोटा-सा मकान । वहाँ भी दरवाजा खोलने उसे ही उठना पड़ता था। पप्पू जी को देखकर खींझ उठती थी। उधर भाभी चिल्लाकर पूछती, “कौन है ?” उन्हें निरन्तर यह डर बना रहता था कि दरवाजा खोलते ही अंजू कहीं आगन्तुक को हड़प न ले। “पप्पू जी है” वो तुरन्त सूचित करती। तब ये ही सज्जन दबी आवाज़ में कहते थे “खैरियत है.... भैया नहीं कहा।”

कमरे के अन्दर आकर पप्पू जी अपनी कमीज़ के ऊपरी चार बटन खोल देते.... ‘बड़ी गर्मी है और लगातार अंजू को घूरते रहते। छोटा-सा कमरा..... गप्पें मारते पप्पू जी और भाभी, उनकी बातों पर कुढ़ती अंजू। वो उन सिद्धियों की याद करती जिनके दम पर सिद्ध पुरुष किसी को भी मक्खी बनाकर कान पर बैठा लेते थे। उसकी बड़ी इच्छा होती थी, या तो मक्खी बनकर खुद उड़ जाये या पप्पू जी को चींटा बनाकर मसल डाले। लाख किताब में मुँह गाड़े रहो, शरीर पप्पू जी की चुभती टटोलती निगाहों से बेहाल ! भाभी के साथ चलती उनकी सस्ती नौटंकी से ऊब, वो चाय बनाने चल देती। देवर-भाभी का रिश्ता जितना सुविधाजनक है, ननद-भाभी का उतना ही असुविधाजनक। वो चाहे तो अपना नाम ही असुविधा रख सकती है। एक कमरे के मकान में, पति-पत्नी और

बच्ची के बीच वो कितनी बड़ी असुविधा थी। रात को रसोई में सोने, दिन भर बच्ची को संभालने और श्रीमती अंगूरी देवी महाविद्यालय से मिले वेतन का

रहा है या गर्म चाय का प्याला पकड़ने से उसकी हथेलिया गर्म हैं, अंजू ने चाय पीते हुए सोचा। पप्पू चाय पीकर चला गया।

ताज्जुब है ! जिस आदत को वो अपने अस्तित्व के लिये इतना ज़रूरी मानती थी, कैसे चुपचाप बदल गई। कई आदतें बदल गई हैं। निष्कारण आकाश को देखते रहना, बिना वजह हँसते रहना, खासी ऊँची आवाज़ में फिल्मी गाने गाना। शादी बहुत कुछ बदल देती है ! कम से कम लड़कियों की जिन्दगी में !

अधिकांश उन्हें समर्पित कर देने पर भी। जहाँ तक पढ़ा जा सकता था, पढ़ी ! एम.ए.एम.फिल किया। तब भी विवाह नहीं हुआ तो पी.एच.डी. करने लगी। मगर ढंग की नौकरी और अच्छा घर-वर नहीं मिला। यूँ पतझड़ के पत्तों की तरह विवाह प्रस्ताव आते थे और दिखौआ भी। पर छब्बीस साल की उम्र में राजा रामचन्द्र कहाँ मिलेंगे। ज्यादातर मारीच और सुबाहु जैसे लोग आते थे। आते थे, खातिर-तवाजों करवाते थे और चले जाते थे। दहेज के अभाव में विवाह का खतरा कौन मोल ले। बड़ी री री झीं झीं के बाद सुदर्शन नामधारी वर जुटे। मिडिल स्कूल में हिन्दी के अध्यापक ! सब तरह की प्रतियोगी परीक्षाओं में फेल हो लिये, हर जगह हाथ-पाँव मार लिये, उमर बीती जा रही थी, अतः हार कर दहेज की माँग भूलनी पड़ी और केवल 'गौर वर्ण, सुन्दर, गृहकार्य में दक्ष' पर संतोष करना पड़ा। पप्पू जी इन सुदर्शन जी की दूर के रिश्ते की बुआ के सुपुत्र निकले। सो आना-जाना जारी रहा।

अंजू ने ढाई कप चाय बनाई और एहतियात से तीन अपेक्षाकृत छोटे प्यालों में डाली। उन दोनों को चाय दे, खुद पप्पू के पास आ बैठी। बच्चू का बुखार उतर

“सुनो, आज तुम्हारे भाई मेरा हाथ देख रहे थे।”

“नया क्या बताया ? अच्छा घर-वर मिलेगा तो कह नहीं सकते, बेटा होगा जैसी बात भी बेकार है। क्या कह रहा था।”

“कहा..... मेरे हाथ में राजयोग है।”

“राजयोग ?”

“हाँ, राजयोग ! यानि कि सरकारी नौकरी मिलेगी मुझे !”

“ये नौकरी बिना आवेदन पत्र दिए मिल जाएगी या विज्ञापन की प्रतीक्षा कर आवेदन पत्र देना होगा !”

“तुम भी, बस्स !” अंजू उदास हो गई। वो शादी से पहले नौकरी करती थी। प्राइवेट कॉलेज में ही सही, पर थी तो नौकरी ही। शादी के बाद अपना नाम और काम छोड़ देना पड़ा। शादी के बाद लड़की का प्रथम कर्तव्य होता है, सास-ससुर की सेवा ! न जाने ये पुण्य कार्य लड़के क्यों नहीं कर सकते ! उनका सारा पराक्रम इस बात में निहित है कि दान-दहेज सहित एक लड़की ब्याह कर ले आयें और फिर हर जिम्मेदारी उसके कंधों पर डाल, खुद अपने ही घर में मेहमान की तरह रहने लगे ! शादी के बाद तो सारे कुनबे ने सिर

मटका-मटका कर कहा था, 'हमें नहीं करवानी अपनी बहू से नौकरी'। पर दिन-ब-दिन बढ़ती महंगाई ने सब का मन बदल दिया था। अब सब चाहते थे कि अंजू को कहीं नौकरी मिल जाये तो अच्छा है। उसे चुप देख, समझौते के सुर में सुदर्शन ने कहा।

“कहीं रिक्त स्थान निकले तो आवेदन दे देना।”

“आजकल भविष्यवाणी का युग तो रहा नहीं। घर में बैठे-बैठे मुझे रिक्त स्थान का क्या पता चलेगा ? तुम ही स्कूल में अखबार पढ़ते हो, देख लिया करो।”

ताज्जुब है ! जिस आदत को वो अपने अस्तित्व के लिये इतना ज़रूरी मानती थी, कैसे चुपचाप बदल गई। कई आदतें बदल गई हैं। निष्कारण आकाश को देखते रहना, बिना वजह हँसते रहना, खासी ऊँची आवाज़ में फिल्मी गाने गाना। शादी बहुत कुछ बदल देती है ! कम से कम लड़कियों की जिन्दगी में !

अंजू ने चाय के बर्तन समेटे और नल के नीचे रखकर उन्हें धोने लगी। बर्तन धोकर अंगीठी सुलगाई और शाम का खाना बनाया। अगर कही नौकरी लग जाये तो गैस स्टोव जैसी बुनियादी ज़रूरत का सामान खरीदा जाये। बच्चू जाग गया था और दूध के लिये मचल रहा था। दूध की बोतल लेकर रसोईघर से निकली ही थी कि दीदी दीदी दीदी का हल्ला सुनाई दिया। छोटी बहन मंजू थी। वो ऐसे ही आधे रास्ते से चिल्लाती हुई आती है।

राजयोग

मंजू ! ऊर्जा और आत्मविश्वास की प्रचण्ड मूर्ति !

कोई बात धीरे कहना, कोई काम धीरे करना उसके लिये संभव ही नहीं।

चलती है तो धम् धम् करके, बैठती है तो धड़ाम से, कोई बर्तन रखेगी तो खटाक से। मंजू आकर बैठी तो बेचारी खाट कराह उठी। बच्चू रोने लगा। सुदर्शन उसे चुप कराने लगे।

“दीदी.... तूने यह अखबार देखा ? व्याख्याता पद की वांट्स निकली है। तू एप्लाइ कर दे।”

“अरे वाह।” अंजू बोली।

तो जो पप्पू जी कह रहे थे, उस बात में दम है। जब अंजू और मंजू अखबार में डूब गई तब श्रीचरण प्रगट हुए। वो हर काम में अपनी पत्नी मंजू से आधा घण्टा धीरे चलते थे। उनकी जोड़ी ऐसी है, जैसे रेस का घोड़ा और कोल्हू का बैल एक साथ जोत दिया गया हो। अंजू ने उठकर श्रीचरण की अभ्यर्थना की। कुर्सी दी और चाय-पानी को पूछा। आखिर बहनोई है।

मगर ध्यान उसका अखबार में अटका था। गोरे-चिट्टे, गोल-मटोल श्रीचरण सीनियर सेकेंडरी स्कूल में गणित के प्राध्यापक थे। गणित के प्राध्यापक और हिन्दी के प्राध्यापक में वही अन्तर होता है जो अजगर और केंचुए में होता है। कहने को दोनों सरीसृप हैं। मगर अजगर अजगर है और केंचुआ ? कुछ नहीं ! जब श्रीचरण पानी का गिलास थाम कुर्सी पर बैठ गये, तब दोनों बहनों ने पुनः विज्ञापन पढ़ना शुरू किया। श्रीचरण पहले ही पढ़ चुके थे। अतः “एक्सपर्ट कमेन्ट” प्रसारित करने लगे। “पाँच पद है, दो आरक्षित और तीन ‘ओपन’। इन पाँच पदों के लिये पचास हजार अर्जियाँ।”

अंजू-मंजू ने इस उत्साहवर्धक जानकारी के लिये उन्हें घूर कर देखा।

श्रीचरण निर्लिप्त आगे सूचनाएँ प्रसारित करते रहें।

“वैसे भी रेट बँधा है। लाख-डेढ़ लाख हो तो बात बने।”

अब अंजू सचमुच आंतकित हो गई। पचास हजार में से पाँच का चयन ! एक डेढ़ लाख रिश्वत में ! उसने अखबार तहाकर रख दिया। क्या फायदा है किराया भाड़ा खर्च करने में।

सुदर्शन को पूरा भरोसा था, यह काम नहीं होने का। राज्य सेवा आयोग कोई मजाक है ? साक्षात्कार में पीसकर रख देते हैं। सब्जेक्ट एक्सपर्ट आता है, जनरल नॉलिज के सवाल पूछे जाते हैं। जब सुदर्शन ये वैतरणी पार नहीं कर पाये तो अंजू ! खैर ! जी की निकाल लो ! बाद में मत कहना, पति ने जाने नहीं दिया।सो उछल-उछल कर कहने लगे।

“नहीं जी ! जो भी हो। ‘एप्लाइ’ तो करना ही चाहिए। और ‘कॉल’ आ जाये तो ‘इंटरव्यू’ के लिये भी जाना चाहिए।”

मंजू को तो पूरा भरोसा था कि ये ‘वांट’ निकली ही अंजू के लिये है। हाँ, श्रीचरण बराबर बुदबुदा रहे थे लाख डेढ़ लाख से कम में बात बनने वाली नहीं। फिर भी सब का मत था कि आवेदन पत्र तो भेजना ही चाहिए और साक्षात्कार की तैयारी भी करनी चाहिए। क्या तैयारी करे ! जो बात श्रीचरण कह रहे हैं, गलत नहीं है। साक्षात्कार नाममात्र की औपचारिकता है। असली मुद्दा है धनराशि। चौराहे पर डुग्गी पिटवा कर अपना सब कुछ नीलाम कर दे, तो भी इतनी धनराशि इकट्ठी न हो सकेगी। श्रीचरण अपनी रौ में कहे जा रहे थे....

“ऐसा सुना है राज्य सरकार ने कुछ एजेण्ट नियुक्त कर रखे हैं। साक्षात्कार से



पहले एजेण्ट प्रत्याशी से सम्पर्क स्थापित कर बाजार भाव बता देता है। अब आपकी मर्जी ! चाहे तो एक साथ दे दें। नहीं तो आसान किशतों में भी चलेगा।” वो कई लोगों को जानते थे जो नौकरी लगने के पाँच साल बाद तक सहर्ष ये किशतें चुकाते रहते हैं।

..... और वो जी जान से साक्षात्कार की तैयारी में जुट गई। लेकिन यह इतना आसान न था। यह कोई खाना बनाने की तैयारी जैसा तो था नहीं कि मिर्च मसाला इकट्ठा किया और हो गई तैयारी ! सारे दिन का काम-काज निबटाकर खाट पर लेटती तो साक्षात्कार का ध्यान आता।

ब्याह करके, कैसा भी हो, अपना घर तो है। सोचा था, बच्चू थोड़ा बड़ा हो जाये तो नौकरी की सोचूंगी। ससुराल में पढ़ी-लिखी, अंग्रेजीदाँ बहू पर सब ताने कसते थे। उस पर आनन्द की पराकाष्ठा यह कि उनकी अपेक्षाओं का कहीं कोई अंत नहीं ! घबरा कर अंजू उठ बैठी और सिरहाने

इसी तरह ऐंगी-भेंगी आँखों वाली, घिसट-घिसट कर मैट्रिक करने वाली लड़कियाँ मोटे दहेज के बल पर अच्छा घर-वर पा गई और सचमुच राज कर रही है। यहाँ सारी सुन्दरता, प्रतिभा और बुद्धिमता केवल डेढ़ हज़ार रुपयों में तीस दिन दो वक्त चूल्हा जलाये रखनें में खर्च हो रही है।

“और नौकरी लगने के बाद न भरें ये किशतें तो ?” शंकालु और मुखरा मंजू की जिज्ञासा थी।

तो ? मुम्बई के भाई लोग हैं, बीहड़ स्थानों पर स्थानान्तरण है, विभागीय जाँच बिठाकर स्थगन आदेश है। कई तरीके हैं ऐसे अनुत्तरदायित्वपूर्ण आचरण से निबटने के लिये। अजीब साँप-छछूंदर की गत है। साक्षात्कार के लिये न जाओं तो ऐसा अच्छा मौका गंवा देने का दुःख हमेशा सालता रहेगा। जाओं तो लाख डेढ़ लाख जुटाने की तिकड़म बैठाओ ! अगर ये इंतजाम नहीं हुआ और चयन नहीं हुआ, तो ये दुःख सालेगा, हाय ! लाख-डेढ़ लाख दिया होता तो मैं भी चुन ली जाती ! कैसी मुसीबत है ! रात के एकान्त में उसने अपने प्रमाण पत्रों को उलट-पलट कर देखा। विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान, प्रथम श्रेणी, अन्य पाठ्येत्तर गतिविधियों में अनेकानेक पुरस्कार। क्या ये सब कागज़ अंगीठी सुलगाने के काम आयेंगे। ऐसा तो नहीं होना चाहिए। वो ज़रूर आवेदन पत्र भेजेगी। जो होगा देखा जायेगा !

क्या सचमुच प्रतिभा का, परिश्रम का कोई मूल्य है ? उसका मन कहता, हाँ, है ! और अनुभव कहता, नहीं है ! उसकी कक्षा में पढ़ने वाले कितने ही छात्र केवल सिफारिश के बूते पर अच्छी नौकरी पा गये। इसी तरह ऐंगी-भेंगी आँखों वाली, घिसट-घिसट कर मैट्रिक करने वाली लड़कियाँ मोटे दहेज के बल पर अच्छा घर-वर पा गई और सचमुच राज कर रही है। यहाँ सारी सुन्दरता, प्रतिभा और बुद्धिमता केवल डेढ़ हज़ार रुपयों में तीस दिन दो वक्त चूल्हा जलाये रखनें में खर्च हो रही है।

वज़ह इतनी ज़रा-सी है कि क्लर्क पिता के पास पाँच संतानों के लिये ढंग से रोटी-कपड़ा जुटाने को पैसा न था, अच्छा घर-वर कहाँ से खरीदते ? वो तो छात्रवृत्ति और ट्यूशन की जय हो - पढ़ाई-लिखाई हो गई। और पढ़ाई-लिखाई की अर्जन क्षमता संदिग्ध नहीं, इसलिये विवाह हो गया। वरना ? वरना अभी भी श्रीमती अंगूरी देवी महाविद्यालय में पढ़ा रही होती और भाभी की गृहस्थी संभाल रही होती।

रखी किताब पढ़ने लगी ! बात सीधे-सीधे करने में क्या हर्ज है ? साक्षात्कार कक्ष में घुसते ही पूछ ले ! ये ढोंग-धतूरे छोड़ो, श्रीमान् ! कहिये, क्या रेट चल रहा है ! लाख-डेढ़ लाख तो बेकार की बात है। हाँ, पचास हज़ार तक दे सकती हूँ। उसके लिये भी सारे ज़ेवर बेचने होंगे। तब ! तब क्या होगा। उसे फौरन बाहर निकाल दिया जायेगा।

लम्बी साँस ले उसने पुनः अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के पन्ने पलटने शुरू कर दिये।

श्रीचरण के बताए आँकड़े सही थे। तीन ओपन और दो आरक्षित पदों के लिये पचास प्रत्याशियों को साक्षात्कार के लिए बुलाया गया था। दस, दस के समूह में विभिन्न तिथियों पर राज्य सेवा आयोग के सम्मुख उपस्थित होने के आदेश मिले। अपने समूह की बारी आने पर वह बाकी प्रत्याशियों का आत्मविश्वास देखकर दंग रह गई। कोई किसी का ‘आदमी’ था, कोई किसी का खास रिश्तेदार ! कोई हाथ की पाँचों ऊँगलियों को खोल-बाँध कर बता रहा था कि कितने हज़ार खर्च किये। बुरी तरह खीझ उठी अंजू। बेकार-किराया-भाड़ा खर्च किया। जब साक्षात्कार के लिये उसका नाम पुकारा गया तो वह जुझारू सैनिक की मनःस्थिति लिये मानो रणभूमि में

उतरी।साक्षात्कार आरम्भ हुआ। सामने एक सज्जन छोटी सी पुस्तक खोले बैठे थे। कवर पर जॉन कीट्स का नाम लिखा था। उन्होंने पुस्तक से कविता पाठ आरम्भ किया।

“वी लुक बिफोर एण्ड आफ्टर”
एण्ड पाइन “फॉर वॉट इज़ नॉट”
....किसने लिखी है ये पंक्तियाँ।

“पी.बी. शैली ने” अंजू अभी भी मरने-मारने को संकल्पित थी। सज्जन ने पुस्तक थोड़ी और ऊँची की ताकि जॉन कीट्स का नाम स्पष्ट दिखाई दे, दो चार पंक्तियाँ और पढ़ी, पुनः सोचकर, उत्तर देने को कहा।

झुंझला कर अंजू ने पूरा पद ही दुहरा दिया। सज्जन चुप हो गये। अब दूसरे सज्जन की बारी थी। ये सब्जेक्ट एक्सपर्ट थे और अलीगढ़ विश्वविद्यालय से आये थे। उन्होंने ऐसे-ऐसे दुरूह प्रश्न पूछे कि अंजू को आनन्द आ गया। ‘परिश्रम ही सफलता की कुंजी है’ जैसी पिष्टोक्तियों पर आस्था पनप उठी। श्रम सार्थक होता जान पड़ा।..... लगा, यह साक्षात्कार नहीं, क्लास रूम है। और परिचित प्रोफेसर साहब उसकी बुद्धि की परीक्षा ले रहे हैं, प्रतिभा को धार दे रहे हैं। पौन घण्टा कैसे निकल गया, पता ही नहीं चला। अब तीसरे सज्जन खंगारे। उन्हे भी तो अवसर मिलना चाहिए।

“आपके बायोडेटा में लिखा है, आपको नाचने-गाने का शौक है। ज़रा कुछ नमूना दिखाइये।”

रोकते-रोकते भी अंजू के मुँह से हाज़िर जवाबी का यह नायाब नमूना निकल गया। सब सदस्य खिलखिला कर हँस पड़े तो प्रश्नकर्ता को भी खिसिया कर साथ देना पड़ा। बाकी बचे दो। उनमें

से एक ने व्याकरण संबंधी प्रश्न पूछने शुरू किये। और शुरू किये तो पूछते ही चले गये। लगातार असंतोष से सिर हिला रहे थे और समझ में न आने का संकेत कर रहे थे। अंततः कुछ नाराज़ होकर बोले,

“आप क्लास रूम में ऐसे ही ग्रामर पढ़ायेंगी ?”

“जी नहीं। क्लास रूम में ब्लैकबोर्ड और चॉक होता है। चार-पाँच उदाहरण बोर्ड पर लिखे हों तो बात आसान हो जाती है।”

“अब आप ब्लैकबोर्ड और चॉक माँगने को कहेंगी।”

सज्जन ने गुस्सैल मोटे बिल्ले की तरह घुरघुरा कर कहा ! अब अन्तिम सज्जन की बारी थी। उन्हें सामान्य ज्ञान का प्रश्न पूछना था।

“मरी मैं” अंजू ने सोचा। घर पर अखबार तक तो आता नहीं, और सामान्य ज्ञान की परीक्षा देने चली हूँ।

“तो कौन महिला थी जो सफल राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ लोकप्रिय कवियित्री भी थी !”

हे ईश्वर ! तू है, जरूर है ! मन ही मन प्रभु को धन्यवाद दिया।

“भारत कोकिला सरोजिनी नायडू।” सधे स्वर में उत्तर दिया।

उनके कविता संग्रह का नाम था, ‘ऑन द गोल्डन थ्रैशहोल्ड’

“ठीक है। अब आप जा सकती है।” सदस्यों ने सिर हिलाकर साक्षात्कार पूरा होने का संकेत दिया।

धन्यवाद दे अंजू बाहर आ गई।

“कैसा रहा इन्टरव्यू” प्रतीक्षारत प्रत्याशियों ने सामूहिक आक्रमण कर दिया।

“क्या बताऊँ ? सब्जेक्ट एक्सपर्ट बहुत रगड़ रहा है।” अंजू ने बताया।

“अच्छा।” अगले प्रत्याशी ने टाई ठीक की। “देखता हूँ साले को। प्रधानमंत्री के पी.ए. से फोन करवाया है।

अन्दर सब्जेक्ट एक्सपर्ट अपनी ज़िद पर अड़े थे। “प्रथम स्थान आप प्रधानमंत्री- मुख्यमंत्री की सिफारिश पर दो, मगर द्वितीय स्थान पर अंजू शर्मा ही रहेगी। बड़ी ब्रिलियेण्ट और हाज़िर जवाब लड़की है।”

....आगे से राज्य के बाहर का सब्जेक्ट एक्सपर्ट नहीं बुलायेंगे। बाकी सदस्यों ने कुढ़कर निर्णय लिया। साला। काबू में ही नहीं आ रहा। तरह-तरह के तर्क दिये। औरतजात है। कहेगी, यहाँ मत भेजो, वहाँ मत भेजो। कभी बच्चा बीमार, कभी खुद ! मेटरनिटी लीव लेगी, सो अलग । इलैक्शन ड्यूटी, जनगणना ड्यूटी पर भेजने में भी सिक्वोरिटी रिस्क। क्यों बेकार की ज़िद पर अड़े है। आप तो चले जायेंगे, भुगतना हमें पड़ेगा। दो आरक्षित पदों को तो हाथ भी नहीं लगा सकते। बाकी बचे तीन। उनमें से एक पर आपने वीटो लगा दिया, तो बताइये, हम क्या करेंगे।

पर सब्जेक्ट एक्सपर्ट अड़ा रहा।

“अरे ! एक तो कैडीडेट ऐसा हो जो पढ़ाए ! आप लोगों के बाल बच्चे कॉलेज में नहीं पढ़ते क्या ? सभी सिफारिशी रख लिये तो पढ़ायेगा कौन ?”

बहुत जोर लगाया, मगर वो भी रावण के दरबार में अंगद का पाँव निकला।

लिखा था अंजू के भाग्य में राजयोग। लगभग डेढ़ महीने बाद उसे राजाज्ञा मिली। सुबकिया महाविद्यालय में

अंग्रेजी भाषा व साहित्य के व्याख्याता पद पर नियुक्ति पत्र।

अंजू ने चैन की साँस ली। अब यह नाव खेई जा सकेगी। मंजू बहुत खुश हुई, उसे अपनी बहन की योग्यता पर पूर्ण विश्वास था। श्रीचरण ने अपनी स्वाभाविक निर्विकार मुद्रा में कहा कि अपवाद हर जगह होते हैं। अर्थात् बिना लाख डेढ़ लाख दिये काम हो गया। सुदर्शन कुछ खिन्न से लगे। बच्चू को कौन देखेगा ? परिचितों ने पूछा कितना खर्च हुआ ? अंजू ने लाख कहा एक धेला भी नहीं ! पर किसी ने विश्वास नहीं किया। बात विश्वास करने लायक थी भी नहीं।

अंजू ने दूसरे ही दिन सुबकिया महाविद्यालय जाकर अपना कार्यभार संभाल लेने की ठानी। मगर एक बड़ी भारी अड़चन थी। सुबकिया तहसील जिला मुख्यालय कल्लाना से डेढ़-सौ किलोमीटर दूर है। कैसे आयेगी - जायेगी। यहाँ, कल्लाना कॉलेज में भी दो स्थान रिक्त है। यही हो जाता तो अच्छा था। मंजू ने सलाह दी, एक बार शिक्षा निर्देशक से मिल लो। शिक्षा निर्देशक

अध्यापक पद से प्रिंसिपल और फिर पदोन्नत हो शिक्षा निर्देशक बने थे। उन्होंने अंजू को पढ़ाया भी था। उनके कई शोधपत्रों की सामग्री अंजू ने जुटाई थी और क्रमवार लगाकर लिख भी डाली थी। हो सकता है, उसकी मुश्किल आसान कर दें! लेकिन प्रदेश की राजधानी जाकर, शिक्षा निर्देशक से मिलना आसान न था। सबसे बड़ी परेशानी थी बच्चू! साथ ले जाये तो कैसे ? और छोड़ जाये तो कहाँ ? मंजू ने यह दायित्व संभाला। ससुराल पक्ष केवल सुविधाओं को भोगने के लिये तैयार रहता है। ज़रा सी असुविधा होते ही अपनी माँ से कहो, मंजू को बुलाओ। “शिक्षा निर्देशक” से मिली तो बड़ी मुश्किल से पहचान पाई उन्हें। अच्छा खासा प्रतिभाशाली व्याख्याता, प्रशासक पद पाकर बिल्कुल बदल गया था। केंचुआ साँप बन गया था। फन काढ़कर फुफकारा।

“सबको कल्लाना कॉलेज में नियुक्ति चाहिये। यह कैसे संभव है ? जो दो स्थान रिक्त है, दोनों मुख्यमंत्री के केंडीडेट्स के है।” फिर बात खत्म करने

के अंदाज में बोले, “दिक्कत क्या है ? बहुत से लोग सुबह जाते हैं, रात को लौट आते हैं। तुम भी यही करो।”

“लेकिन सर ! राजपत्रित अधिकारी के लिये मुख्यालय पर रहना अनिवार्य है।”

“वो कोई समस्या नहीं है। सब आते-जाते हैं। कोई एक्शन नहीं लिया जाता है।” वो फाइलों में डूब गये। संकेत स्पष्ट था। काफी देर तुम्हारी बात सुन ली, अब तशरीफ ले जाओ।

इस व्यर्थ की यात्रा पर अंजू को क्षोभ हुआ। यह तथ्य तो जग जाहिर है कि सरकारी योजनाएं, नियम-कायदे... सब कागजों पर फलते-फूलते हैं। अकल के दुश्मन ही उनके निर्वहन की आशा रखते हैं। तो यही तय रहा कि सुबह की ट्रेन से जायेगी और शाम ट्रेन से लौट आयेगी। कल्लाना महाविद्यालय में स्थानीय विधायक की सुपुत्री और कलक्टर साहब की पत्नी की नियुक्ति हुई।.....

(शेष उपन्यास में पढ़ें)



आज का पाकिस्तानी उर्दू साहित्य

आज़ादी के दस पन्द्रह वर्षों में पाकिस्तान में भी सांप्रदायिक दंगे, प्रवास का दर्द, नए पाकिस्तानी की उलझनें आदि लेखन के आधार पर विषय बने रहे। 'खुदा की बस्ती' जैसा उपन्यास इसी दर्द से बाहर निकला था।



संपर्क :

मुशर्रफ आलम जौकी, D-304 ताज एन्कलेव, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110031

पाकिस्तान में उर्दू साहित्य का हाल, भारत के उर्दू साहित्य की तरह नहीं, जहाँ नव-लेखकों का आना ही लगभग बन्द-सा हो चुका है। पाकिस्तान का आधुनिक उर्दू साहित्य लगभग वैसा है, जैसा हम हिन्दी साहित्य के बारे में कह सकते हैं। युवाओं की एक बड़ी फौज तैयार है, लेकिन बंदिशों के साथ-

कहा जाता है कि किसी देश को, वहाँ की जनता के मिज़ाज, संस्कृति को जानना हो तो वहाँ का साहित्य पढ़ लीजिए। लेकिन अभी हाल-फिलहाल तक यह बात पाकिस्तानी साहित्य के लिए नहीं कही जा सकती थी, क्योंकि पाकिस्तान आज़ाद तो हुआ लेकिन आज़ाद मुल्क के हुक्मरानों को पत्रकारिता और साहित्य की आज़ादी गवारा नहीं थी।

पाकिस्तान का अवामी शायर हबीब जालिम हुक्मरानों के विरोध में कविताएं लिखता था और जेल की हवाएं खाता था वह लिखता था, "खुदा हमारा नहीं है, खुदा तुम्हारा है।"

कहते हैं वहाँ के मशहूर आलोचक डॉ॰ हसन असकरी इस नए इस्लामी देश के लिए इस्लामी सोच रखने वाला कोई साहित्यिक नायक तलाश करना चाहते थे। ख़ैर, यह तलाश मंटो पर ख़त्म हुई। मगर मंटो के बाद नए-नए पाकिस्तान की फ़िज़ा में राजनैतिक और सामाजिक चुनौतियों को

साहित्य में पेश करना आसान नहीं था। कुछ कथाकार पाकिस्तान जाकर ख़ामोश हो गए। कुदरतुल्लाह शहाब जैसा साहित्यकार ख़ुद सरकारी तंत्र का हिस्सा बन गया। नई आबो-हवा में सांस लेने वाला रचनाकार संकेतों और प्रतीकों द्वारा अपनी बात कहने के लिए मजबूर था।

आज़ादी के दस-पन्द्रह वर्षों में पाकिस्तान में भी सांप्रदायिक दंगे, प्रवास का दर्द, नए पाकिस्तानी की उलझनें आदि लेखन के आधार पर विषय बने रहे। 'खुदा की बस्ती' जैसा उपन्यास इसी दर्द से बाहर निकला था। कुदरतुल्लाह शहाब, अज़ीज़ अहमद, मुमताज़ मुफ़्ती, आगा बाबर, सलाहुद्दीन अकबर, ख़दीजा मस्तूर, हाजरा मस्तूर जैसों के अफ़साने दर्द के कोख से जन्मे थे। 1960 के बाद साहित्य में जदीदियत की शुरूआत हुई लेकिन पाकिस्तान में जदीदियत का असर कुछ ज़्यादा ही कबूल किया गया।

डॉक्टर सलीम आगा कजलिबाश ने अपनी किताब 'जदीद उर्दू अफ़साने' में लिखा है, "1958 में पाकिस्तान में मार्शल लॉ लगा दिया गया। 'जुबानबंदी' की जो सूतेहाल हुई, उससे बाहर निकलने के लिए कथाकारों ने 'प्रतीकात्मक' अंदाज़ इख़्तियार किया। यानी ऐसी बातें नहीं की जाएं जिससे मार्शल लॉ में उनकी गिरफ़्तारी संभव हो सकती थी।"



जाहिर है पाकिस्तान के सख्त मार्शल लॉ का आतंक उस समय उर्दू अफसाने पर साफ़ देखा जा रहा था। इसी दर्मियान वहाँ “तजरीदी” अर्थात् एक्सट्रेक्ट कहानियाँ भी लिखी गईं। इंतेज़ार हुसैन ने कई कहानी की ‘बूतीका’ लिखी। इंतेज़ार हुसैन नए अफसाने के बाबा आदम बन गए। धीरे-धीरे लिखने वालों का काफ़िला फैलता जा रहा था, रशीद अमजद, अनवर सज्जाद, ख़ालिदा हुसैन, मंशा याद, अहमद हमेश, अहमद

जाहिदी, उमराव तारिक, आसिफ़ फ़रूख़ी और असद मुहम्मद ख़ाँ।

यहाँ नाम गिनाना मंशा नहीं है। लेकिन ज़हीन अफसाना निगारों का एक बड़ा काफ़िला अच्छी और नई कहानियाँ लेकर सामने आ रहा था।

1965 में भारत-पाक युद्ध के नतीजे में पाकिस्तान में पहली बार देश-प्रेम जैसी भावनाओं ने जन्म लिया। उस समय के लगभग सभी साहित्यकारों ने भारत-पाक युद्ध को अपना विषय बनाया।

आस्ट्रेलिया में बसने वाले पाकिस्तानी साहित्यकार अशरफ़ शाद के दो उपन्यास ‘बेवतन’ और ‘वजीरे-आज़म’ आज के पाकिस्तान की कथा सुनाते नज़र आते हैं।

दाऊद, फ़हीम आज़मी, समी आहूजा, महमूद वाज़िद, शमशाद अहमद, नासिर बगदादी, अहमद जावेद, मिर्ज़ा हामिद बेग, शम्स नगमान, ताहिर नकवी, एजाज़ राही, मज़हरुल हक इस्लाम, अनवर

गुलामुस्सक़लैन नकवी ने ‘जली मिट्टी की खुशबू’, मुमताज़ मुफ़्ती ने ‘पाकिस्तान’, खदीजा मस्तूर ने ‘ठण्डा-मीठा पानी’, इसी तरह मसूद मुफ़्ती और फ़ख़न्द लोधी ने भी इस विषय को लेकर

कहानियाँ लिखीं।

1971 की जंग के बाद मामला दूसरा था। राजनैतिक गतिविधियाँ तेज़ हो चुकी थीं, इधर पाकिस्तान के एक धड़ का अलग होना अर्थात् ‘बांग्लादेश’ का बनना पाकिस्तानी कथाकारों के लिए नई भावनाओं को लेकर आया था। इसे पाकिस्तानी अफसाना निगारों ने ‘जज़्बाती-त्रासदी’ के तौर पर लिखा था। इंतेज़ार हुसैन, मसूद अशर, अख़्तर जमाल, रशीद अमजद, अली हैदर मल्लिक, शहज़ाद मंजर, ए. ख़य्याम, अहमद जैनुद्दीन, शहनाज़ परवीन, नरुल होदा सैयद जैसे कथाकार दर्द से प्रभावित कहानियाँ लिख रहे थे।

1980 से 90 के बीच हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के साहित्य में ‘बयानिया’ की वापसी हो चुकी थी। इसी बीच पाकिस्तान ने ‘प्रॉक्सी युद्ध’ भी भारत के विरुद्ध छेड़ दिया था। कहानियाँ इन नई ‘समस्याओं’ को समझाने की कोशिश कर रही थीं।

पाकिस्तान में 1958 यानि मार्शल लॉ लगने के बाद से लेकर लम्बे समय तक साहित्य पर एक ख़ास तरह के सेंसरशिप से इंकार नहीं किया जा सकता लेकिन यह अजीब सा सच है कि पाकिस्तानी कहानियाँ आज जनरल परवेज़ के इस आमिराना शासनकाल में ज़्यादा आज़ाद हुई हैं।

नए कथाकार भारत पाक युद्धों के काले इतिहास को भुलाकर नए सिरे से दोस्ती का पैग़ाम लेकर सामने आ रहे हैं। मुहम्मद इल्यास, गुलनौखेज़ अख़्तर, समीना इफ़तेख़ार, सलीम आगा कजलिबाश की कहानियाँ पाकिस्तानी राजनीति से प्रेरित नहीं हैं बल्कि यह आज का सच बोलती कहानियाँ हैं।

आस्ट्रेलिया में बसने वाले पाकिस्तानी साहित्यकार अशरफ़ शाद के दो उपन्यास 'बेवतन' और 'वजीरे-आज़म' आज के पाकिस्तान की कथा सुनाते नज़र आते हैं। फौजी शासन का आतंक सरकारी सहूलियतों का दुरुपयोग, मस्जिदों पर बैठी हुई पुलिस, दूसरे दर्जे के शहरी जैसा 'महाज़र', अशरफ़ शाद के इस ख़तरनाक ट्रायोलोजी का तीसरा हिस्सा भी 'सदरे-आला' के नाम से अभी हाल में प्रकाशित हुआ है।

नई पीढ़ी ने खुलकर 'बयानिया' अंदाज़ में अपनी बात कहने का

सिलसिला शुरू किया है। पत्रकारिता का माहौल चाहे जैसा भी रहा हो लेकिन साहित्य ने खुली हवा में सांस लेना आरंभ कर दिया है। पुरुष और महिला कथाकारों की एक बड़ी खेप सामने आ चुकी है। यह खेप निडरता के साथ अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभा रही है। लेकिन एक-दो वर्षों में पाकिस्तान की फिजा एक बार फिर अशांत है। लाल मस्जिद से निकलने वाले शोले और उठते हुए धुएँ ने भूतपूर्व जनरल मुशर्रफ को एक सहमा हुआ बीमार आदमी बना दिया है। नई सरकार साहित्यकारों के साथ क्या करती

है यह देखना अभी शेष है। पाकिस्तानी साहित्य की उड़ानों में बगावत पर एक बार फिर अंकुश और प्रतिबंध लगाने का सिलसिला जारी है। पाकिस्तान की साहित्यिक पत्रिकाएं बाहर नहीं जा सकें, इसके लिए डाक खर्च इतना बढ़ा दिया गया है कि जल्दी इन्हें पोस्ट करने की हिम्मत नहीं कर पाता। स्पष्ट है, इस तरह पाकिस्तानी साहित्य में उठने वाली बगावत की आँच केवल पाकिस्तान तक सीमित रह जाएगी। ◆



■ पाकिस्तानी कहानी : अहमद सगीर सिद्दीकी

अनुवादक : नबी अहमद

विभाजित

ये सिलसिला रुका नहीं था और फिर मैंने कुछ और लोगों से बात की। सबने कहा ये हरकत उसी की है। मगर ये नहीं मानता। हमारे पास कौन सा सबूत है जो उसके मुँह लगे और फिर जनाब उसकी इज्जत ही क्या है।



संपर्क :

संपर्क (अनुवादक), ई-18,
न्यु गोविन्दपुरा, गली न०. 1,
परवाना रोड, दिल्ली - 110051
मो० 09999668358

मैं कोई डेढ़ सौ आदमियों को गोली मार चुका था। मैंने देखा कि अब मेरे पास और कोई चारा नहीं तो फिर मैंने अपने आपको भी गोली मार ली। मगर

शरीफ़ होना और इन्साफ़ पसंदी किसी ऐसे माजरे में बड़ी पीड़ादायक होती हैं जो बेहिंसी की बुलंदियों पर हो। बदक्रिस्मती से ये विशेषताएं मेरे अन्दर पाई जाती थीं। ये सिलसिला शुरू भी इसीलिए हुआ था। बस अचानक ही कुछ करने का ख़्याल मेरे अन्दर पैदा हुआ था। ये ख़्याल तो बहुत दिनों से मेरे अन्दर पैदा हो रहा था मगर असल में नहीं ढला था।

अमल की तरफ़ मैंने उस दिन ध्यान दिया था जब मुझ पर यह भेद खुला था कि इस गंदी गली में मौजूद गटर आए दिन बन्द क्यों होते रहते हैं जो मेरे घर के पीछे थी। गटर बन्द हो जाता था और किसी के घर में पानी भरने लगता था। कभी किसी के घर। कई बार ख़ुद मेरे घर में भी यही मुसीबत आई थी।

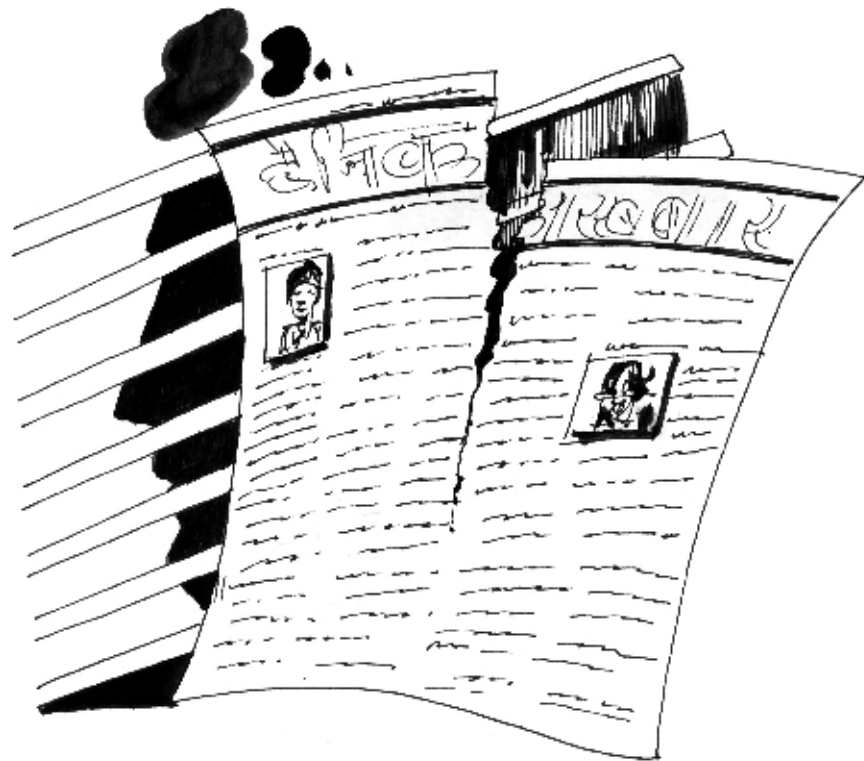
फिर मुझे पता चला कि ये सारी मुसीबत उस जमादार की वजह से पैदा हो रही थी जो इधर कुछ अर्से से 'म्यूनििसिपलिटि' की तरफ़ से भेजा गया था। उसे जब पैसों की ज़रूरत होती थी वो कोई चीज़ नालियों में टूंस देता था फिर उसके निकालने के भी सौ रुपये तलब करता था। सौ रुपये ज़रा सोचिए। मैंने उसे

बुला कर कहा भाई। आखिर ये क्या 'सबब' है जो नालियाँ बन्द होती हैं ... ज़रा इस शब्द "भाई" पर ध्यान दें। उसने कहा - "बादशाहो। मुझे क्या पता। कचरा जमा हो जाता है।" मैंने कहा ... "पता नहीं ये सुअरपन किसका है।" उसने कहा... "जी बादशाहो होगा किसी का, हम तो हर वक़्त इधर होते नहीं।"

ये सिलसिला रुका नहीं था और फिर मैंने कुछ और लोगों से बात की। सबने कहा ये हरकत उसी की है। मगर ये नहीं मानता। हमारे पास कौन सा सबूत है जो उसके मुँह लगे और फिर जनाब उसकी इज्जत ही क्या है। उल्टें हमीं बेइज्जत हो जायेंगे। बात ठीक थी। मुझे याद आया। मैंने अक्सर किस्से कहानियों में पढ़ा था कि पुराने वक़्तों में बड़े लोग इन कमज़ातों के साथ बड़ा ग़ौर इंसानी सलूक किया करते थे। मुझे ये सब मालूम करके बहुत दुख़ होता था। मगर अब बात मेरी समझ में आ रही थी कि भेद क्या था। मैं उस जमादार को "भाई" कह कर बात कर रहा था और वो... फिर मैंने फैसला किया कि उसे गोली मार देनी चाहिए। मगर मेरे पास रिवालवर या पिस्तौल नहीं था। इसका लाइसेंस शरीफ़ आदमियों को आसानी से नहीं मिलता था। पान फ़रोशों तक के पास मैंने उसे देखा था मगर मेरे जैसे अफ़सर को नहीं मिल रहा था। रिश्वत आदि के खर्च

बहुत थे, मैंने फिर बिना लाइसेंस के पिस्तौल से काम चलाया। उस दिन मेरे घर की नाली फिर बन्द हुई मैंने इसे खुलाने के बाद उसे गोली मार दी। ख़स कम जहाँ पाक, पहला क्रल्ल करने के बाद मुझे पर खून सवार हो गया था। मेरी नज़र में वो रिक्शा ड्राइवर भी था जिसने एक बार मेरे पांच की तकलीफ़ का फ़ायदा उठा कर सिर्फ़ थोड़े से फ़ासले तक मुझे ले जाने के लिए पूरे चालीस रुपये वसूल किये थे। वो मीटर से चलता ही न था और उसका मीटर हवाई जहाज़ वाला था।

उस दिन वो बाहर अपनी जगह मौजूद किसी सवारी से सौदाबाजी कर रहा था। मैंने पूछा तो सवारी ने कहा साहब मुझे जल्दी है ये सब्जी मंडी नहीं जा रहा है। कहता है पचास रुपये होंगे जबकि मैं रोज़ जाता हूँ इधर इस जगह से किराया पच्चीस-तीस रुपये होता है। मैंने उसी वक़्त फ़ैसला किया था। उसे गोली मार दी थी। एक तीसरा शख्स मेरी नज़र में और था। ये एक केमिस्ट था। मेरे मुहल्ले के बाज़ार में उसकी दुकान थी। उसी चौक के पास जहाँ मैंने रिक्शे वाले को ठिकाने लगाया था। ये शख्स वहाँ पर अपनी क्रीमत का स्टीकर चिपका कर के दवा बेचता था और एतराज़ पर ढिठाई से कहता था “लेना हो तो लो वर्ना कहीं और से खरीद लो” उधर कोई दूसरी दुकान न थी। ये उसे मालूम था। कुछ दवाएं जो बाज़ार से गायब थी उन्हें वो चौगुने दामों ब्लैक में देता था। मैं मरीज आदमी हूँ। मेरे जैसे लोग स्वस्थ रह ही नहीं सकते। मैंने उसे झांक कर दुकान में देखा, वो किसी से दामों पर बहस कर रहा था। मैंने निशाना लेकर गोली चलाई और उसका सर उड़ा दिया।



उस दिन का चौथा क्रल्ल कोई सोचा-समझा मंसूबा न था। नज़दीक ही पोस्ट आफिस था और मुझे कुछ लिफ़ाफे लेने थे। विंडो पर मौजूद क्लर्क एक अख़बार पढ़ रहा था। मैं उसके सामने कोई पांच मिनट खड़ा रहा तब उसने सिर उठा कर पूछा, “हां।”

मैंने कहा... “अख़बार पढ़ चुके?”

उसने कहा... “क्या लेना है?”

मैंने कहा... “क्या तुम्हें यहां अख़बार पढ़ने की तनख़्वाह दी जाती है?”

उसने कहा... “बकबक मत करो... लेना क्या है?”

मैंने कहा कुछ नहीं... मेरी गोली ने उसे कुर्सी से नीचे लुढ़का दिया।

मैं उधर से बाज़ार की तरफ़ बढ़ा तो एक चायख़ाने के सामने खड़ी पुलिस मोबाइल नज़र आई। वो चार आदमी खड़े

थे और चाय वाला कह रहा था। “साहब जी ! ये तरीका ठीक नहीं दिन भर आप लोग इधर आकर खड़े रहते हो। चाय पीते हो और रक़म नहीं अदा करते। और उसके सामने खड़ा ए.एस.आई उसे गुस्से से घूरे जा रहा था। पुलिस का नाम सुन कर सभी कानों को हाथ लगाते हैं। “पुलिस का है काम मदद आपकी” ये स्लोगन बिल्कुल ग़लत था। सब उसे कहते थे। “पुलिस का है काम मुरम्मत आपकी।” मैंने सोचा... कहीं से ठीक करने का आगाज़ तो होना चाहिये। मैंने उसे मौक़े पर गोली मार दी और चल गया।

पाँच कल्ल एक दिन में करने के बाद.... मैंने रात अच्छी तरह सो कर गुज़ारी। मन ही मन मैं खुश हो रहा था। मैंने बहुत अच्छे काम का आगाज़ किया था और उसे जारी रखना चाहता था।

एक-एक करके माशरे के गन्दे नामवर खत्म हो रहे थे। अदालत के कटघरे के बिना।

इसके बाद मैंने दूसरे दिन उस एजुकेशन आफ़ीसर को आफ़िस में जाकर गोली मार दी जो मेरी साली से एक भारी रिश्तत इसलिए तलब कर रहा था कि उसकी सर्विस बुक की प्रविष्टियाँ

मुजरिमों और समाज के दुश्मनों का सफ़ाया करना आसान नहीं। हमारे यहां की न्याय व्यवस्था इस संदर्भ में किसी काम की नहीं। उनके खिलाफ़ कोई गवाही नहीं देता। फिर उनका सफ़ाया कैसे हो सकता है।

ठीक करा देगा जिसे खुद उसने ग़लत-शलत भरवाई थी। मेरी साली एक टीचर है। उसने मुझे बताया था कि ये और इसका क्लर्क मिली भगत से हम सबको तंग करके पैसे वसूलते हैं।

इसके बाद मैंने एक डॉक्टर को 'जहन्म' रसीद किया और उस वज़ीर की तलाश में चल दिया जिसके हुक्म पर मुहल्ले के प्लेग्राउण्ड पर ग़ौर कानूनी कब्ज़ा कराया गया था। ये ज़रा मुश्किल काम था मगर उसे गोली मारनी ज़रूरी थी।

कत्ल पर कत्ल करने के बाद मेरी झिझक खत्म हो चुकी थी। मुजरिमों और समाज के दुश्मनों का सफ़ाया करना आसान नहीं। हमारे यहां की न्याय व्यवस्था इस संदर्भ में किसी काम की नहीं। उनके खिलाफ़ कोई गवाही नहीं देता। फिर उनका सफ़ाया कैसे हो सकता है।

पुलिस उनसे मिली होती है। फिर उनका कोई कुछ कैसे बिगाड़ सकता है। इसका तो बस यही तरीक़ा अच्छा था जो मैंने अपनाया था।

महीने के आख़िर में, मैंने सोचा तो अंदाज़ा हुआ कि मैं कोई डेढ़ सौ ऐसे बुरे लोगों को गोली मार चुका हूँ जो किसी

भी तरह ज़िन्दा रखे जाने के लायक न थे। मुझे खुशी थी कि मैंने बड़ी मुहिम में अपना हिस्सा डाला है। एक अच्छे काम में अपनी भरपूर कोशिश की है। ये बड़ा दिल 'खुशकुन' ख़्याल था। मैं अपने घर से बाहर निकला। और मेरी मुसरत एकदम से काफ़ूर हो गई मेरे होंठ जो मुस्कुरा रहे थे सिकुड़ गए। मैंने अपनी

आँखें दोनों हाथों से मलीं और ग़ौर से देखा। हाँ, वो वही जमादार था। जिसे मैंने गोली मार दी थी। वो अपनी साइकिल पर सवार चंद बांस लटकाये मजे से जा रहा था। ये नहीं हो सकता। कोई और होगा। मैं चलता हुआ चौराहे पर पहुँचा। वो रिक्शा ड्राइवर जिसे मैंने गोली मार दी थी। मजे से सिगरेट का धुआँ उड़ा रहा था। हाँ ये वही था।

बहुत ही करीब से मैं उसे देख रहा था। ये वही था।

मैंने तश्वीश से उस पर निगाह डाली और आगे चला गया। किसी ख़्याल के आने पर मैंने चन्द क्रदम उठाये और केमिस्ट की दुकान के अन्दर झाँका। जिसके मालिक को मैं गोली मार चुका था।

वो... हां वही। काउंटर पर खड़ा था अपनी काली दाढ़ी और सफ़ेद टोपी के साथ।

मेरे खुदा मुझे चक्कर-सा आने लगा। तो क्या... ?

हां ये बात यक़ीनी थी कि वो तमाम बक्रिया लोग भी ज़रूर जिन्दा होंगे।

फिर मैं उस पोस्ट आफ़िस की तरफ़ भी चला जहां से क्लर्क को मैंने दुनिया से

रवाना करने की कोशिश की थी और मेरे बदतरीन संदेह की पुष्टि हो गई। वो क्लर्क बिंडो के सामने अख़बार फैलाए हुए पढ़ने में गर्क था।

तो गोया.....

मेरी गोली मारने की ये क्रिया मेरा भ्रम था या ?

मेरा ज़ेहन अब बुरी तरह चकरा रहा था,..... मैं उसी जगह रुक गया और डोलने लगा कुछ नहीं हो सकता।

मुझे अपनी बेबसी बहुत पीड़ादायक लगी। इतनी कि मुझे लगा मेरा ब्रेक डाउन हो जायेगा।

ए.. खुदा

मैं क्या करूँ। मैं किसी तरह जिन्दा रह सकता हूँ इन सब के दर्मियान ?

“एक ही सूत है” करीब से आवाज़ उभरी। “इन्हीं की तरह हो जाओ।”

“क्या मतलब ?” मैंने पूछा।

“मतलब ये कि तुम भी मर जाओ।”

“सही कहा।” मेरे मुँह से निकला।

मैंने अपना पिस्तौल अपनी कनपट्टी से लगाया और बड़बड़या। मैं इन्हें नहीं मार सकता।.... और इनके साथ रह भी नहीं सकता। इसलिए मुझे मर ही जाना चाहिए।

फिर मैंने ट्रेगर दबा दिया।

और.... मर गया

मगर....

वो तमाम लोग जिन्हें मैंने मार दिया था जिस तरह सबके सब जिन्दा थे और अपने कामों में मसरूफ़ थे उसी तरह मैंने देखा कि मैं भी जिन्दा हूँ और अपने कामों में लगा हुआ हूँ। लेकिन ये राज़ सिर्फ़ मुझको ही मालूम है कि वास्तव में, मैं जिन्दा नहीं। अर्सा हो गया मुझे खुद को गोली मारे हुए।

■ पाकिस्तानी कहानी : इतिज़ार हुसैन

अनुवादक : डॉ. खान हफीज़

दूसरा रास्ता

हाथ में लम्बी छड़ी टंगी हुई, गत्ते की तख्ती, तख्ती पर लिखा था मेरा उद्देश्य मुसलमान हुकूमत के पीछे नमाज अदा करना है।

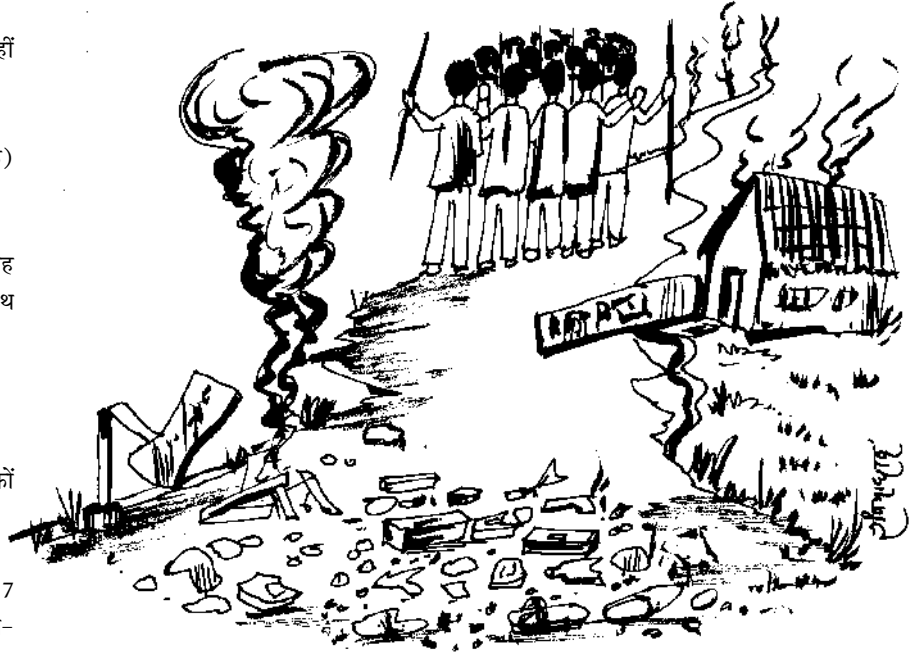


जन्म : 1 जुलाई 1954 ई० पीरनपुर (अरबपुर) हंस्वां फतेहपुर (यू० पी०)
मुलाज़मत : कैमिस्ट (शिफ्ट इंचार्ज) जे० के० रेयान, कानपुर (1977 से 1983 तक)
पेशा : पढ़ना-पढ़ाना और मेडिकल प्रैक्टिस
शिक्षा : 1. एम० एस० सी० (गणित)
2. एम० ए० (उर्दू)
पहली रचना : शादी का आशिक (हास्य-व्यंग्य नाटक) 1971
पहली प्रकाशित रचना : तीसरा टांग (कहानी) 1978
प्रकाशित पुस्तकें : 1. मैं चुनाव नहीं लड़ूंगा (हास्य-व्यंग्य नाटक) 1980
2. पैंबद (लघु कथाओं का संग्रह) 1981
3. बँटा हुआ दिल (सामाजिक नाटक) 1984
4. राजश्री (ऐतिहासिक नाटक) 1988
5. उर्दू नम्र की तरक्की में तंज़ओ मिज़ाह का हिस्सा (आज़ादी के बाद) शोधग्रंथ 2003
अप्रकाशित पुस्तकें :
6. धुँए का शहर (कहानी संग्रह)
7. रावण (लघु कथाओं का संग्रह)
8. शादी का आशिक (हास्य-व्यंग्य नाटकों का संग्रह)
9. नुक्कड़ नाटक (संग्रह)
संपर्क : डा० खान हफीज़, 2/17 फहीमाबाद लेबर कालोनी, चमन गंज-कानपुर- 208001, मो० 9335118262

मेरा उद्देश्य मुसलमान हुकूमत के पीछे जुमा अदा करना .. वह बहुत चकराया यह कैसा नारा है, मगर कुतबे पर तो यही लिखा हुआ था।

उस समय वह डबल डेकर की ऊपरी मंज़िल में खिड़की के बराबर की सीट पर बैठा था और बाहर देख रहा था। सफ़र में चाहे वह बस का सफ़र हो या लारी का या रेलगाड़ी का, उसने सदैव खिड़की के बराबर बैठना पसन्द किया कि यूँ आदमी अन्दर के अच्छे-बुरे लोगों के हुजूम का हिस्सा बनने से बच जाता था और बाहर के तेज़ी से बदलते हुए दृश्य से सम्बन्ध मजबूत कर लेता है। वह जब-जब सफ़र

में खिड़की से दूर बैठा यह समझता था कि वह भीड़ का हिस्सा बन गया है। मगर आज डबल डेकर की ऊपरी मंज़िल की सीटें अच्छी खासी संख्या में खाली पड़ी थी। उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ कि बस इतनी देर के बाद आई है फिर भी ऐसा रश नहीं है, मगर उसने खिड़की के बराबर बैठकर बाहर देखना प्रारम्भ कर दिया और शीघ्र ही अन्दर के दृश्य से बेखबर हो गया, अगर जफर उसके साथ न बैठा होता तो वह शायद अन्दर के दृश्य से पूर्ण रूप से अपने आपको अलग कर लेता। मगर जफर ने बैठे-बैठे उसे फिर टहूका दिया, “इम्तियाज़ देख रहे हो।”



उसने बाहर देखते-देखते अन्दर अपने से अगली सीट पर नज़र डाली, जिस की ओर इशारा किया था, उसे पता नहीं चला था, जाने वह आदमी किस समय आ बैठा था। हाथ में लम्बी छड़ी टंगी हुई, गते की तख्ती, तख्ती पर लिखा था मेरा उद्देश्य मुसलमान हुकूमत के पीछे नमाज़ अदा करना है। दोनों ने

**मेरा सवाल पाकिस्तान के छः अखबारों में शायी (प्रकाशित) हो चुका है।
इमाम वालों मुझे जवाब दो। सात पैसे का कार्ड लिखकर, क्योंकि ज़बानी
बहस से झगड़े का डर है और फसाद मना है।”**

कुत्बा पढ़ा, फिर एक दूसरे को देखा और मुस्कराया।

अब बस की सारी सीटें भर चुकी थीं। बल्कि कुछ लोग तो जीने के पास डंडा पकड़े खड़े थे। धीरे-धीरे कुत्बे से अंजान होकर वह बाहर देखने लगा था कि अचानक कुत्बे वाले आदमी ने झुरझुरी ली और खड़ा हो गया। उस ओर से, उस ओर तक उस कोने से आखरी सीट तक बैठे हुए लोगों को देखा, खँखारा और शुरू हो गया।

“जुल्म की टहिनी कभी फूलती नहीं / नांव कागज़ की कभी चलती नहीं।” ए-मेरे मुसलमान भाईयों अर्सा गुज़र गया है। इंसफ मांगते, इंसफ एहतसाब (आलोचना) याद करो। हज़रत उमर (रज़ि) के कुर्ते पर एतराज़! मगर जहां मुसलमान आज्ञाद न हो, वहां शहज़ोर कमज़ोर है। कुछ नहीं कर सकता। तड़पने के सिवा जैसे मो० अली किले

बराबर की सीट पर बैठा हुआ व्यक्ति, जिसने थोड़ा, उजला थोड़ा मैला सूट पहन रखा था और ज़ानू (रान) पर एक काला चर्मी बैग रखा हुआ था। कुछ

कसमसाया कुछ सटपटया- “मो० अली किले

कुत्बे वाला आदमी उसका सटपटाना देखकर व्यंग्यात्मक हंसी हंसा, “मेरे अज़ीज ने मो० अली किले का नाम सुनकर तअज़्जुन किया। जातबारी की कसम मो० अली किले कमज़ोर आदमी है किस लिए ? इसलिए कि वह महकूम

आदमी है और अब तुम पूछोगे कि फिर चीनी क्यों नायाब है और आटा महंगा क्यों हुआ तो याद करो हज़रत अबूज़र गप्फारी (रज़ि) का छने हुए आटे की रोटी देखकर गिरया (मातम) करना। मुसलमानों एक वक्त गुज़र गया, इंसफ मांगते, इंसफ नहीं मिला। मगर हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज - क्यों मुझे इसका इल्म चाहिए। मेरा सवाल पाकिस्तान के छः अखबारों में शायी (प्रकाशित) हो चुका है। ईमान वालों मुझे जवाब दो। सात पैसे का कार्ड लिखकर, क्योंकि ज़बानी बहस से झगड़े का डर है और फसाद मना है।”

जफर ने मुस्कराते हुए उससे कहा “इम्तियाज़ सुन रहे हो ?”

“सुन रहा हूँ” वह बेज़ार होकर बोला, फिर बाहर देखने लगा। बाहर देखते-देखते अचानक चौंका “यार हम किधर जा रहे हैं ?”

ज़फर उसकी घबराहट पर थोड़ा चकराया, “क्यों क्या हुआ ?”

“यार यह तो बहावलपुर रोड मुड़ गई।”

किसी पीछे की सीट पर बैठे-बैठे

किसी व्यक्ति ने ऊँची आवाज़ से पूछा “कंडेक्टर यह बस किधर जा रही है ?”

किसी ने क्रोध से कहा “क्या ड्राइवर का दिमाग चल गया है।”

कंडेक्टर ने सटपटा कर बाहर झांका फिर जवाब दिए बगैर, घबराहट में नीचे उतर गया। कुत्बे वाला आदमी बोलते-बोलते चुप हो गया और अपनी सीट पर आ कर बैठ गया।

बस बहावलपुर रेड पर मुड़ी और थोड़ी दूर चल कर खड़ी हो गई वह फिर चौंका....

“यार यह कौन-सा बस स्टैंड है?”

बैग वाले व्यक्ति ने बाहर झांक कर देखा फिर बोला “यह कोई स्टैंड नहीं है पता नहीं बस क्यों खड़ी हो गई।”

“ड्राइवर कोई नया आदमी मालूम होता है।” किसी ने टुकड़ा लगाया।

कंडेक्टर सीढ़ियाँ चढ़ कर तेज़ी से ऊपर आया, ऐलान किया, गाड़ी रीगल नहीं जाएगी, जिसको उतरना हो उतर जाए।”

“रीगल नहीं जाएगी” आश्चर्य फिर क्रोध “क्यों नहीं जाएगी ?”

“उधर गड़बड़ है जो, रीगल वाले जल्दी करें, उतर जाए।”

घबराहट की एक लहर पैदा हुई, कुछ सवारियां नीचे उतर गईं।

“मगर स्टेशन तो जाएगी ?” बैग वाले व्यक्ति ने प्रश्न किया।

“स्टेशन जाएगी” कहते-कहते कंडेक्टर की आवाज़ ने फिर ऐलान किया “स्टेशन वाली सवारियां बैठी रहे।”

उसे डर लगा, सोचा बस तो इन दिनों बहुत गैर महफूज़ सवारी है। यहीं उतर पड़ो और टैकसी करके आगे चलो।

फिर से सोच विचार किया। ज़फर

मेरे बारे में क्या सोचेगा। जफर के ख्याल से उसने अपने पर क्राबू पा लिया। उसने पुनः सोचा गड़बड़ रीगल की तरफ है। मैंने रीगल का रास्ता ही छोड़ दिया है। डॉइवर ने दूर आंदेशी दिखाई। उसने दिल ही दिल में उसकी दाद दी, फिर वह खिड़की से बाहर झांकने लगा। वह देर तक खिड़की से बाहर देखता रहा फिर सिर अन्दर करके बोला- “यार समझ में नहीं आ रहा है कि बस किधर जा रही है।” “तुम किस चक्कर में पड़े हो, बस को स्टेशन पहुँचना है जिस रास्ते भी पहुँचे हर हालत में पहुँच जाएगी।”

“जनाब इस बात पर मुझे अपना एक ख्वाब याद आ गया, मैं घर के सेहन में बैठा खाना खा रहा था। थाली में रोटियाँ रखी थीं। आप को यक्रीन नहीं आएगा, पेशावरी पराठे से बड़ी रोटियाँ और ऐसी सफेद जैसे मैदे की हों और ऐसी नर्म जैसे लुचियाँ। इतने में एक मोटा-सा बंदर दीवार से कूदता है, मेरे सामने से सारी रोटियाँ उठाता है और यह जा, वह जा।”

दूसरी ओर की सीट पर खिड़की के बराबर बैठे हुए उस आदमी जिसने भैसिया रंग की मलगुजी-सी अचकन पहन रखी थी। यह सुन कर खिड़की से बाहर देखा और चिन्ता के साथ ऊँची आवाज़ में प्रश्न किया “कंडेक्टर किधर जा रहे हो?”

“ठीक जा रहे हैं जी”

अचकन बैग वाला व्यक्ति संतुष्ट होकर बैठ गया। फिर बराबर बैठे हुए फ्रेंच-कट दाढ़ी वाले व्यक्ति से बोला “साहब क्या ख्याल है। आप का ? हालात बिगड़ते ही चले जा रहे हैं”

विश्वसनीय व्यक्ति ने गम्भीर लहजे में कहा “अजीज-हालात इस वक्त बहुत खराब हैं। अचकन वाले आदमी ने उसकी बातों का समर्थन करते हुए कहा

“साहब मेरा भी यही ख्याल है। कल एक अजीब वाक्य हुआ” क्या ?”

“कल मेरी मुर्गी ने यकायक बिल्कुल मुर्गे की तरह बाजू फड़फड़ाए, गर्दन फैलाई और बाग देनी शुरू कर दी।”

बैग वाले आदमी ने चौंक कर पूछा “मुर्गी ने ?”

“जी हां मुर्गी ने, मैंने तुरन्त उसकी गर्दन पर छुरी फेर दी।”

“हैरत की बात है” बैग वाला बोला जैसे उसे यक्रीन ही नहीं हो रहा हो

“हैरत की बात और चिन्ता की भी, अल्लाह हम सब पर रहम करे” अचकन को ऐनक वाले आदमी का मुस्कराना कुछ भाया नहीं “क्यों जनाब”

“नहीं!”

“आप मत मानें मगर ऐसा होता है। मैं आप को एक वाकया सुनाता हूँ। हमारे ताया जान की एक खलिया सास थी, वह दिल्ली की थीं। वह कहा करती थीं, कि क्रिले से रमजान के रमजान आफतारी के ख्वान जामा मस्जिद जाया करते थे, इस साल भी गए, मगर शाम को क्या हुआ कि ख्वान किले से बाहर निकले ही थे कि न जाने किस तरफ से चीलें मंडलाती आईं। ऐसा झपट्टा मारा कि ख्वान आँधे हो गए किसी के समझ में न आया कि यह क्या हुआ। उस शाम जामा मस्जिद में

आफतारी तकसीम नहीं हुई। उस रमजान में ईद से पहले दिल्ली में क्रयामत बरपा हो गई, फिर गदर मच गया। काल पड़ा, ऐसा काल, बस यह समझ लो जबरदस्त काल पड़ा।”

विश्वसनीय व्यक्ति, गौर से सुनता रहा फिर कहने लगा “हां अजीज यह इशारात गैबी होते हैं। कुदरत रिज्क छीनने से पहले किसी न किसी रंग में इशारा अवश्य करती है। अब कोई समझे या न समझे।”

बैग वाले आदमी ने झुरझुरी ली “जनाब इस बात पर मुझे अपना एक ख्वाब याद आ गया, मैं घर के सेहन में बैठा खाना खा रहा था। थाली में रोटियाँ रखी थीं। आप को यक्रीन नहीं आएगा, पेशावरी पराठे से बड़ी रोटियाँ और ऐसी सफेद जैसे मैदे की हों और ऐसी नर्म जैसे लुचियाँ। इतने में एक मोटा-सा बंदर दीवार से कूदता है, मेरे सामने से सारी रोटियाँ उठाता है और यह जा, वह जा।”

अचकन पोश ने कुछ तअज्जुब कुछ अफसोस से पूछा “सारी रोटियाँ ?”

“जी सारी रोटियाँ” बैग वाले ने दुख भरे लहजे में कहा “कोई रोटी नहीं छोड़ी, थाली खाली और जनाब आप को शायद यह बात अजीब सी नज़र आए मगर यह हादसा है कि उसके बाद मैं पनपा नहीं। कारोबार चौपट हो गया। सारा पैसा गारत हो गया। यह नौबत हो गई कि मोटर भी बिक गई। अब मैं बस से सफर करता हूँ।”

विश्वसनीय व्यक्ति ने कुछ सोचते हुए सवाल किया “यह ख्वाब तुमने कब देखा था ?”

“कोई दस बारह साल पहले की

बात है शायद इससे पहले की या शायद उसके बाद की”

“सदका दिया था ?”

“नहीं।”

“दे देना चाहिए था”

बस की रफ्तार अचानक बहुत तेज हो गई, खिड़की से बाहर देखते-देखते वह बेचैन हो गया, तब ज़फर की ओर देखकर बोला “यार ज़फर मारे गए”

“क्यों क्या बात है ?”

“लगता है कोई जुलूस है ?”

कंडक्टर ने ऐलान किया “बादशाहो, अपने-अपने सिर अन्दर कर लो, जो-जो आदमी सिर निकाले बाहर देख रहे थे, उसने गर्दन अन्दर कर ली। सब इस तरह सिकुड़ गए जैसे वह पोटली बन गए हों। ऐनक वाला आदमी अब भी बाहर देख रहा था। विश्वसनीय व्यक्ति ने संजीदगी से कहा, “अजीजो, सिर अन्दर कर लो, ईंट सिर देख कर आती है।”

“बादशाहो सिर अन्दर कर लो-ए-भाई टोपी वाले बाबू सिर अन्दर...” कंडक्टर ने पिछली सीट पर किसी को बाहर झांकते देखा था और सचेत किया था।

उसने झुरझुरी ली “यार ज़फर अजीब सी बात है।”

“क्या ?”

“वही ज़माना वापस आ गया है।”

“कौन-सा ?”

हमारी गाड़ी रात के समय मशरकी पंजाब से गुज़र रही थी, मैं रात भर सिगरेट नहीं पी सका, एक बार माचिस जलाई थी कि डिब्बे वालों ने शोर मचाया माचिस बुझाओ, रोशनी पर गोली आती है।

“इम्तियाज़ घपला मत करो, वह

क्रिस्सा और था, यह क्रिस्सा और है।”

“कैसे ?”

“वह हिन्दू-मुसलमान का क्रिस्सा था।”

“और यह ?”

“यह पैदल, सवार का क्रिस्सा है।”

“मैं समझा नहीं ?”

“सीधी-साफ बात है, इस वक्त हम बस में सवार हैं। और ऊपरी मंज़िल पर बैठे हैं। इसलिए ईंट भी ज़द में है।”

उसने सोचा फिर कहा “अगर मैं अगले बस स्टाप पर उतर जाऊँ फिर ?”

“फिर तुम भी ईंट मारने वालों में होंगे।”

“हरगिज़ नहीं...”

“तो फिर तमाशाइयों में होंगे....”

वह उस बात का जवाब देने लगा था कि बस अचानक रुक गई। वह चौंका “क्या बात हुई ? बस रुक गई ?”

“कोई स्टॉप होगा” ज़फर बोला।

“बस अपने रूट पर नहीं चल रही है तो स्टाप पर रुकने का क्या सवाल है और यह कहते-कहते उसने खिड़की से पूरी गर्दन बाहर निकाल कर नीचे देखा। शायद स्टाप ही था या शायद कोई स्टाप नहीं था। एक आदमी धोती बांधे मैला-सा कुर्ता पहने जोर-जोर से सीढ़ियाँ चढ़ता आया और पास की सीट पर बैठ गया,” और बोला - “बाबू जी कौन-सा नम्बर यह है ?”

ज़फर ने उसे देखा और कहा “जब यह बस चली थी, तब तो उसका एक नम्बर था और वह हमें मालूम था, अब पता नहीं उस का क्या नम्बर है ?”

वह आदमी उस जवाब से कुछ चकराया। रुका, फिर सीधा सवाल किया। “बाग़बानपुर जाएगी ?”

“अब यह बस किसी भी रुख जा सकती है। ज़फर कहने लगा “हो सकता है यह बाग़बानपुर की तरफ ही निकल जाए।”

वह आदमी उन बातों से कुछ शक में पड़ गया। कुछ सोच कर यकायक उठ खड़ा हुआ, ठीक उस समय जब कंडक्टर की सीटी बज चुकी थी, वह तेजी से सीढ़ियाँ उतर गया।

“यार ज़फर” उसे भी अब बेचैनी होने लगी “हम आज स्टेशन पहुंच भी पाएंगे ?”

“पता नहीं बस किस रास्ते से आ रही है, इसने आड़ा तिरछा रूट अखियायार किया है।”

“मुझे तो लग रहा है कि इस वक्त इस बस की कोई दिशा नहीं है, बस चले जा रही है।”

“आज तो हम ड्राइवर के रहमो करम पर हैं।”

ऐनक वाले ने थोड़े-से गुस्से में कहा, “ड्राइवर कोई निहायत ग़लत किस्म का आदमी मालूम होता है। अचकन पोश ने अपनी जानकारी दी “अरे साहब मैं ड्राइवर को जानता हूँ। अब तक कई हादसे कर चुका है। कमाल है कि सवारियों की हड्डियाँ पसलियाँ तुड़वा डालता है। खुद साफ बच निकलता है।”

“बहुत ही फेर देकर ले जा रहा है।”

“अमाँ फेर से भी पहुँच जाएँ, तो ग़नीमत समझना।” ऐनक वाला बोला “रास्ता तो सीधा है ?”

“कंडक्टर कहां गया ?”

“कंडक्टर को मारो गोली जी” अचकन पोश गुस्से से बोला “नीचे जा

कर देखना चाहिए कि ड्राइवर भी है या नहीं। मुझे तो यूँ लगता है कि बस इस वक्त बगैर ड्राइवर के चल रही है।”

कुत्बे वाले ने अचानक झुरझुरी ली, खड़ा हुआ और शुरू हो गया। “मुझे अपने मुसलमान भाई की बात सुन कर अफसोस हुआ, बस का चलना, बगैर ड्राइवर के नामुमकिन। यह कलमा कुफ्र और फिर वह पुरानी बातें।”

सुनते-सुनते वह कसमसाया “ज़फर यार, उस आदमी की बातों में कोई रब्त नहीं था।”

“रब्त आज कल किसकी बातों में नज़र नहीं आता है”- ज़फर लापरवाही से बोला,

“हाँ सात पैसे का कार्ड लिख कर, जबानी बहस में झगड़े का डर है और फसाद मना है, इस्लाम के मुताबिक, जिहालत का अमल और इल्म को अमल और अमल का....”

अचकन पोश ने बाहर देखते-देखते अचानक अन्दर की तरफ देखा, चेहरे पर चिन्ता के आसार, आवाज़ घबराई हुई “उस बस के सारे शीशे टूटे हुए थे”

“जी हाँ सब शीशे टूटे हुए थे।”

विश्वसनीय व्यक्ति ने सहिष्णुता से पूछा “भाई तुम कौन सी बस की बात कर रहे हो।”

“यही डबल डेकर जो अभी गुजरी है, खाली पड़ी थी और शीशे चकनाचूर थे।”

“इस का मतलब यह है कि...”

बैग वाला आदमी चिन्ता से बोला “आगे गड़बड़ है।”

विश्वसनीय व्यक्ति ने दुखी लहजे में कहा “समझ में नहीं आता कि लोगों को क्या हो गया है।”

थोड़ी देर के लिए सब खामोश हो जाए फिर बैग वाले आदमी ने बराबर वाले से दबी सी आवाज़ से पूछा “सुबह क्या हुआ था ?”

“पता नहीं साहब, मैं तो अभी घर से निकला हूँ।”

अचकन पोश बड़बड़ाने लगा “अजब ज़माना है, सुबह कुछ, दोपहर कुछ, शाम कुछ अक्ल हैरान है कि हो क्या रहा है।”

अचानक एक ईंट, उसके और ज़फर के पीछे वाली सीट पर, शीशे पर आकर पड़ी, शीशा एक तेज़ शोर के साथ चकनाचूर होकर बिखर गया और उसने बिजली की सी तेज़ी के साथ अपने आप को समेटा, सर ज़फर की कमर और सीट के पीछे टूट लिया, फिर उसे कुछ पता न रहा कि क्या हो रहा है। हाँ! उसने उसी तरह आँखें बंद किये यह महसूस किया कि बस एक झटके के साथ रुक गई और लोग हबड़-दबड़ सीढ़ियों से उतर रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा था। बस ठहर गई और समय भी।

ज़फर ने उसे टहका और उसने सर ऊपर उठाया। जाने कितनी देर के बाद.. मगर यह कि बस चल पड़ी थी।

धीरे-धीरे उसका हौसला बहाल

हुआ। उसने फिर बाहर झाँक कर देखा। सड़क दूर तक खाली पड़ी थी। कभी-कभार गुज़रती, शोर करती, रिक्शा, कोई सरपट करता तेज़ी से गुज़र जाता है, पैदल आदमी, जगह-जगह बिखरी ईंटें। कहीं-कहीं पड़े हुए शीशे, नज़रों के सामने गुज़रता हुआ स्टाप न कोई बुर्का पोश औरत, न कोई ऊँघता हुआ बूढ़ा, सामने सारी सड़क पर बिखरी पड़ी ईंटें और एक गिरते हुए बड़े से साइन बोर्ड से हल्का-हल्का धुआँ उठ रहा था। उसे लगा कि गाड़ी किसी दूर दराज़ के वीरान सुनसान स्टेशन से गुज़र रही है ?”

“यार ज़फर बस स्टेशन की तरफ जा रही है ?”

“कुछ पता नहीं चल रहा है।” अब ज़फर के लहजे में भी चिन्ता का रंग पैदा हो चुका था।

आगे की सीट पर कुत्बे वाला आदमी शान्त बैठा था और उसका कुत्बा उसी तरह अपनी जली हुरफ (स्पष्ट शब्दों) के साथ उसके और ज़फर के सामने था। “मेरा मक्सद मुसलमान हुकूमत के पीछे जुमा अदा करना है।”

उसने फिर ज़फर को टटोला “यार ज़फर ?”

“हम सलामत निकल जाएंगे ?”

ज़फर सोच में पड़ गया फिर लम्बे सोच-विचार के बाद बोला, “क्या कहा जा सकता है ?”

◆
(अप्रकाशित)



■ बांग्लादेश की कहानी : सज्जाद कबीर

अनुवादक : बापी चक्रवर्ती

नींद तो नहीं टूटी

सैफुल भाई का दूसरा नाम ही 'व्यस्तता' है। कभी नशा मुक्ति अभियान तो कभी गारमेंट्स मजदूरों के हित के लिए काम करना। फिलहाल दलित स्त्रियों की शिक्षा का बीड़ा उठाया है। इनका शिक्षित होना अनिवार्य है। नहीं तो सालों-साल बच्चे पैदा करने की मशीन ही बनकर रह जायेंगी।



जन्म : 4 जुलाई, 1957

विगत 35 वर्षों से बांग्ला साहित्यिक पत्रिक 'दूर खेया' का कानपुर से संपादन।

कृति : निजस्व निर्जने एक।

सेई स्वर्गेर दिके जेश्रे चाई

राग करे नय अहंकारे

संपादित संकलन : खेयाघाटे मुखगुलि

संपर्क : G-1/482,

अर्मापुर इस्टेट,

कानपुर - 208009,

दूरभाष - 09336222868

सज्जाद कबीर

बांग्लादेश के जाने-माने कथाकार। एक साहित्यिक हस्ती। जन्म - १२ जून, १९८२। ढाका यूनिवर्सिटी के स्नातक। एक लम्बे समय तक 'कार्टून' एवं 'उन्माद' नामक हास्य व्यंग्य पत्रिकाओं का संपादन किया। वर्तमान में 'तेपान्तर' एवं 'दुरंत' नामक पत्रिकाओं का संपादन। बांग्लादेश रेडियो के नियमित नाट्यकर्मी। अभी तक कुल १२ पुस्तकें प्रकाशित। 'लेखक हओआर किस्सा', 'अल्प-शल्प-गल्प', 'मिसिंग लिंक', 'मगज धुलाई' एवं 'साइड इनकम' चर्चित पुस्तकें हैं। बांग्लादेश के प्रख्यात साहित्य प्रतिष्ठान 'बंगला अकादमी' के आजीवन सदस्य।

मैं अर्ध निद्रा में था, जब मेरे कानों में वह आवाज सुनाई दी। रात को देर से सोने के कारण भोर में नींद बहुत गहरी हो जाती है। लेकिन बीच-बीच में तरह-तरह की आवाजों के कारण नींद हल्की हो जाती है। जरा सी आँख खुलती और फिर मैं नींद के आगोश में खो जाता हूँ। पर आज आने वाली आवाज नई थी या पहले मेरे कानों तक नहीं पहुँच पाई थी। कोई नीचे बस्ती में किसी को पुकार रहा है- 'बाबुल !...ए बाबुल !...'

बाबुल नाम का आदमी जवाब नहीं दे रहा था। पुकार फिर सुनाई दी, 'ए बाबुल ! समय नहीं है।'

मेरी नींद धीरे-धीरे टूटने लगती है। यह कम्बख्त बाबुल खुद न उठकर मानो मेरी नींद हराम करने के चक्कर में है। पर इस बीच मैं कब सो गया, पता नहीं चला। शायद बाबुल और उसके दोस्त काम पर निकल चुके थे।

सुबह हुई और पहली किरण के साथ मैं सपनों की दुनिया से बाहर आ गया। अब मेरे में बाबुल का कोई नामोनिशान नहीं था। और अगर कहीं था भी, तो मन के किसी कोने में ... धुंधला सा। मेरे पास यह सब सोचने के लिए अभी वक्त नहीं था। हर रोज़ की तरह हाथ-मुँह धोकर, नाश्ता करके थोड़ी देर के लिए अखबार लेकर बैठा और फिर नहा-धोकर घर से निकल गया।

आज मेरे पास काम के नाम पर ज्यादा कुछ नहीं था। सिर्फ पिछली रात को पूरा किया लेख, जिसे पत्रिका के दफ्तर तक पहुँचाना था। उसके बाद लगभग खाली ही था। हां ! एक एन.जी.ओ. के सज्जन से दोपहर की मीटिंग थी। उनसे कुछ तथ्य चाहिए था। एक बड़े लेख के लिए उनकी जरूरत थी। कितना मिल पाएगा, मालूम नहीं था। मगर उसमें काफी देर है। इस बीच क्या करूँ ? सोच रहा था।

तभी ख्याल आया, सैफु भाई के वहाँ हो आते हैं। सैफुल भाई ने देखते ही कहा, 'आइए जनाब ! आप तो ईद के चाँद हो गए हैं।'

मैं सुनकर घबरा गया। दो-तीन दिन पहले ही सैफुल भाई से मुलाकात हुई थी। तब और भी लोग थे। शायद इस लिए उन्होंने मुझ पर ध्यान नहीं दिया। शाम को सभी गप्पें मारने आते हैं। मैं भी वहाँ कभी-कभी जाता हूँ। मैंने हंसकर कहा, 'क्यों ? दो दिन पहले ही तो आपसे मुलाकात हुई थी।'

'अरे वो तो यूँ ही गपशप थी। तब क्या कोई काम की बात की जाती है ?'

'क्या हुआ यह बताइए तो सही।'

उन्होंने झटके से कहा, 'कोई भी वादा नहीं निभाता। किसी से थोड़ी सी भी आशा रखना बेकार है।'

सैफुल भाई का दूसरा नाम ही 'व्यस्तता' है। कभी नशा मुक्ति अभियान

तो कभी गारमेंट्स मज़दूरों के हित के लिए काम करना। फिलहाल दलित स्त्रियों की शिक्षा का बीड़ा उठाया है। इनका शिक्षित होना अनिवार्य है। नहीं तो सालों-साल बच्चे पैदा करने की मशीन ही बनकर रह जायेंगी।

सैफुल भाई मेरी तरफ मुखातिब होकर बोलें, 'आपको एक काम करना पड़ेगा। मैं आपको एक विषय दूंगा। जिसको सहज और सरल रूप में लिखना है, ताकि अनपढ़ महिलाएं इसे समझ सकें।'

यह काम वह मुझे पहले भी बता चुके हैं लेकिन मैं ही था जो इसे टालता रहा था।

सैफुल भाई के वहां बैठे-बैठे अनायस ही एक दृश्य मेरी आंखों के आगे कौंध गया। बच्चों का एक समूह जोर-जोर से पढ़ रहा है। एक शिक्षक छड़ी हिला-हिला कर उन्हें पढ़ा रहा था।

मुझे याद नहीं, यह दृश्य किसी सिनेमा में देखा था या अपनी ही बचपन की यादें हैं। याद करने की कोशिश करता हूं... परंतु सफलता नहीं मिलती। मन चंचल हो जाता है। कानों में गूँजने लगता है - 'दो दुनी का चार, दो तिरीके छः...'

'क्या बात है ? जवाब नहीं दे रहे हो ?'

सैफुल भाई की बात से मेरी तंद्रा टूट गई।

मैंने खुद को संभालते हुए कहा, 'जी ? क्या कहें ?'

'आखिर बात क्या है जनाब ? कहां ख्यालों में गोते लगा रहे हैं ? कहीं इश्क का मामला तो नहीं है ?' सैफुल भाई मुस्कराए।

मैं झेंप गया- 'अरे नहीं...नहीं ... आप भी बस... अच्छा अब मैं चलता हूं ?' मैंने उनसे इजाजत ली।

वहां से निकल कर मैं एन.जी.ओ. ऑफिस गया। उम्मीद से ज्यादा तथ्य मिल गए। मैं जब तक काम निपटा कर निकला तो शाम ढल रही थी और सूरज आसमां को अलविदा कह रहा था। अंधेरा शाम को अपनी बाहों में लेता जा रहा था। सुनसान रास्ते के फुटपाथ पर अपनी तन्हाईयों के साथ मैं चला जा रहा था। कुछ दूरी पर ही बस स्टैंड था।

गांवों की पगडंडियों पर.. और सुनाने लगी मिट्टी की खुशबू में घुले हुए धुन। तभी एक बच्चा हाथ में चरखी लिए, पगडंडियों पर बेतहाशा भागता हुआ मेरे सामने से चला गया। उसकी चरखी की फड़फड़ाती आवाज़ मेरे जेहन को झकझोरती चली गई। लुत्फ यह था कि वह आवाज़ और वह दृश्य मेरी आंखों में समाते चले गए ; पर जुल्म यह



सनसनाती हवाएँ शाम-ए-गज़ल की शमा बांध रही थीं और बीच-बीच में गाड़ियों की आवाज़ इनको चीरती हुई निकल जाती थी। सुनसान रास्तों पर चलता हुआ मैं इन धुनों को पहचानने की कोशिश करने लगा। कहां के सुर थे ये... सोच-सोच कर बेचैन होता चला गया। हवाएँ मुझे गीत सुनाते हुए मेरा हाथ पकड़ ख्यालों की एक नई दुनिया में ले

था कि दुबारा यह कब होगा, यह पता नहीं था।

मैं यूं ही चला जा रहा था कि तभी ख्यालों को चीर कर एक छुवन ने मेरी मदहोशी को तोड़ा। उलझे गंदे से बाल और बड़ी-बड़ी आंखों से देखती एक बच्ची मेरे पीछे खड़ी थी और मेरे पीछे छोड़ आए मेरे कदमों की आहटों की ओर बैठा एक बूढ़ा बीड़ी के धुंए के

छल्ले बना रहा था। उसके छल्ले जैसे सिर्फ धुंआ ही नहीं बल्कि जल्लाद के हाथों में थमा फंदा था और कभी-कभी ऐसा भी लगता था जैसे हवा में घुलने से पहले एक सवालिया निशान बना रहे थे। हवा में अपने उन्हीं सवालों के जवाब ढूँढते हुए वो उसी में अपना वजूद खो देती थी। मगर फिर भी धुंए से बनी आकृति, रूहानी जिस्मों की तरह मेरी आँखों के सामने नाचती जा रही थी। मैं उन्हीं में खोता जा रहा था और जी जान से कोशिश करता रहा.. उनसे पीछा छुड़ाने की। और यह सफर यूँ ही चलता रहा।

घर वापस आ गया। एक कागज के टुकड़े पर गौतम ने संदेश लिखा था। गौतम आया था। उसके साथ कहीं जाना था। एन.जी.ओ. से जो भी तथ्य मिले थे अब उनके लिए प्रमाणों की आवश्यकता थी। गौतम के आने का मतलब था कि जाने का सारा इंतजाम हो चुका था। सिर्फ जाने का दिन तय करना बाकी था। मुंह-हाथ धोने के बाद, चाय लेकर मैं सैफुल भाई के लेख की तैयारी करने लगा। गौतम के साथ जाने से पहले यह काम खत्म करना जरूरी था।

रात गहरी थी। पर आंखों से नींद कोसों दूर थी। आज काफी मेहनत हुई थी। मैं पूर्णरूप से थक चुका था। ऐसे हालात में तो नींद अच्छी आनी चाहिए थी। इसके बावजूद नींद नहीं आ रही थी। बात मेरे समझ से परे थी। अंधेरे कमरे में चिंताओं का जाल बनने लगा था। एक अजीब मकड़जाल था। यह जो पत्रिकाओं में हम लिखते हैं। क्या होता है यह सब लिखकर ? कौन पढ़ता है यह सब..? अकेले सैफुल भाई कितना सुधार देंगे ..इस समाज को ? यह समाज सुधरेगा नहीं। इंसान स्वार्थी हो गया है। आज वह अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता

है। जहां इस तरह की मानसिकता सर चढ़कर बोलती है वहां एक लेख कितना असर कर सकता है ? लेकिन लेखनी तो चलानी ही होगी। थमने से काम नहीं चलेगा।

दूर कहीं प्रहरी घंटा बजाता है। उसकी आवाज मेरे मस्तिष्क में अनुनाद करती है। प्रहरी है, इसलिए हम लोग सो पाते हैं। ऐसा ही सोचते-सोचते मैं कब सो गया, पता ही नहीं चला। जगा फिर दूसरी आवाज से, 'बाबुल ! ..ए बाबुल !!'

आँख खोल कर देखा। सूर्यदेव पूर्वाकाश में उदीयमान हो रहे हैं। अंधेरा कट सा गया। उजाला धीरे-धीरे जवानी की तरफ कदम रख रहा था। बाबुल जगने का नाम ही नहीं ले रहा था। फिर उसके दोस्त की आवाज - 'बाबुल समय हो गया ! जल्दी उठ!!'

मेरी नींद खुल चुकी थी। मैं सोच रहा था - पता नहीं यह बाबुल कौन है। जागा या नहीं... उसका साथी उसे छोड़कर चला गया क्या.. ? पता नहीं क्यों सुबह सवेरे ही उसका साथी चिल्लाना शुरू कर देता है ? और यह बाबुल जागता क्यों नहीं ? मैं बाहर बरामदे में खड़ा होकर नीचे बस्ती की तरफ देखकर यह अनुमान लगाने की कोशिश करता हूँ.. किस कमरे में रहता है यह बाबुल ? समझ में नहीं आता है। सब कमरे एक जैसे हैं। कतार में बने हुए..। इसमें रहने वाले लोग भी एक जैसे ही हैं। बस्ती में रहने वाले ये सब लोग मजदूर हैं। कोई मिल में काम करता है तो कोई गारमेंट्स कंपनी में। हाथ में टिफिन लेकर निकल पड़ते हैं ये कामगार.. घर में रह जाते हैं औरत और बच्चे।

पचास घर के बीच एकमात्र नल और उसके अधिकार को लेकर शुरू होता झगड़ा... रोज़ की भांति आज भी दिखाई

दे रहा था।

उस दिन रात में देर से लौटा। लेखकों के जमघट में फंस गया था। रात का खाना खा कर सो गया। इसी बीच फिर वही आवाज, बाबुल! ऐ बाबुल उठो!! समय हो गया है।'

आजकल हम गौतम के साथ घर से दूर उसी लेख के सिलसिले में एक गांव में आए हुए हैं। दो चार दिन व्यस्तता में अखबार भी नहीं पढ़ पाए। आज दैनिक अखबार लेकर बैठ गया हूँ। पहले पन्ने पर ही खबर छपी है, 'गारमेंट्स कंपनी में भीषण अग्निकांड, कई लोग मरे..'

यह कंपनी मेरे ही मुहल्ले में थी। अखबार में यह लिखा था कि मजदूरों को कोई मुआवजा नहीं दिया गया।

मैंने गौतम से कहा, 'देखो यह है न्याय-व्यवस्था !' गौतम ने जवाब दिया, 'पूरे विश्व में यही हालात हैं। गरीबों की कोई मदद नहीं करता।'

काम खत्म होने पर हम घर वापस आए। हमारे पास भरपूर काम था और हम उसके बोझ से लदे हुए थे। थकान बहुत थी। जल्द ही नींद ने आ दबोचा और हम गहरी नींद में चले गए।

सुबह एक बेचैनी से जल्दी नींद टूट गई। प्रतीक्षा में थे हम, अभी आएगा बाबुल का साथी, पुकारेगा बाबुल को...। समय बीतता गया। लेकिन कोई नहीं आया बाबुल को पुकारने। मैं फिर भी प्रतीक्षारत हूँ। कोई तो आएगा, बाबुल को पुकारने... मेरे मस्तिष्क में एक भयानक विस्फोट होता है। मैं चींख-चींख कर कहना चाहता हूँ, 'कोई तो बाबुल को जगाओ, उसके जागने का समय हो गया है।'

पर.....

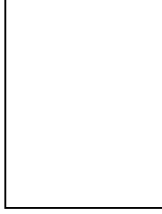
(धूर्जटि चंद संपादित 'एवं' पत्रिका से संगृहीत)

■ नेपाल की कहानी : महेश विक्रम शाह

अनुवादक : कुमुद अधिकारी

छापामार का बेटा

इस छापामार के लड़के के निडर, निश्चल, और निश्चिंत क्रियाकलापों से मैं भीतर ही भीतर सुलग रहा हूँ। क्या यह लड़का इस आँगन को अपने छापामार बाप की जागीर समझता है ? मेरे चेहरे में क्रूरता के भाव उग आए हैं।



महेश विक्रम शाह

1965 में अहम जिले में जन्मे महेश विक्रम शाह की कथा-साहित्य की चार कृतियां प्रकाशित हैं, सराहा, सिपाही की स्वास्नी, अफ्रिकन अभिगों और छापामार को छोरो। छापामार को छोरो के लिए संवत् 2063 का मदन पुरस्कार। नेपाल पुलिस में अधिकारी।

वह छापामार का लड़का है।

मैं अपने ऑफिस की कुरसी पर बैठकर खिड़की से बाहर उसे देख रहा हूँ।

वह आँगन में इधर-उधर खेल रहा है। मैं उसकी हर गतिविधि को एकाग्र होकर देख रहा हूँ। मेरे ऑफिस के सामने दो कमरे का एक मकान है, जो पत्थरों से बना है। एक कमरे के दरवाजे पर ताला लटक रहा है और एक सिपाही राइफल लिए चौकन्ना पहरा दे रहा है। उसी कमरे की खिड़की की रॉड पकड़े एक औरत टकटकी लगाए उसी बालक को निहार रही है। वह उस लड़के की माँ है। हम दोनों की दृष्टि से बेखबर बच्चा खेल रहा है और हम उसी को देख रहे हैं। कभी-कभार हम दोनों की आँखें एक-दूसरे से मिलती हैं। भाव-विहीन उसका चेहरा और भी गति-विहीन हो जाता है, ऐसा ही महसूस करता हूँ मैं।

वह लड़का उछल-कूद तो कर ही रहा है, साथ ही हँस-हँस कर आँगन का चक्कर भी काट रहा है। वह शायद अपने घर के आँगन और इस आँगन के फर्क से अन्जान हो। यहां तो उसकी माँ पिजड़े में है। इस छापामार के लड़के के निडर, निश्चल, और निश्चिंत क्रियाकलापों से मैं भीतर ही भीतर सुलग रहा हूँ। क्या यह लड़का इस आँगन को अपने छापामार बाप की जागीर समझता है ? मेरे चेहरे में क्रूरता के भाव उग आए हैं। इस तरह छापामार के

बेटे का सुरक्षा फौज के कमांडर के सामने निश्चिंत बाललीला का प्रदर्शन करना, उसके बाप द्वारा राइफल से आक्रमण करने के समान ही लग रहा है मुझे। छापामार की बीवी की तरफ देखता हूँ जिसकी आँखें पहले की ही तरह अपने बेटे को ढूँढ रही हैं। अपनी सुरक्षा से ज्यादा अपने बेटे की सुरक्षा के प्रति चौकन्नी है वह।

पर वह लड़का निश्चिंत आँगन में उछल-कूद कर रहा है। ऐसे में मैं सोचता हूँ - इसका बाप छापामार दस्ते का प्लाटून कमांडर रक्तबीज इस वक्त क्या कर रहा होगा। उसे अपनी बीवी और बेटे का सुरक्षा फौज के कब्जे में होना मालूम पड़ गया होगा। उसका गरम खून और खौल उठा होगा, उसके कड़े हाथ राइफल का बट झट पकड़ते होंगे। और फिर राइफल को आकाश की तरफ कर गोली दागता होगा.. ढांय... ढांय.... ढांय। अपनी बीवी और बेटे के ऊपर मंडराते संभावित खतरे को भांप, वह उत्तेजित हो बड़बड़ाता होगा।

मैं वहाँ बैठकर छापामार के संभावित शारीरिक और मानसिक स्थिति की कल्पना में डूबते हुए उसके बेटे के चेहरे में उसकी क्रूरता ढूँढ रहा था। पर मेरे पाँच वर्षीय बेटे और उस लड़के की निश्चलता में मैं फर्क नहीं ढूँढ पा रहा था। फिर भी उस छापामार के लड़के के चेहरे में हिंसात्मक प्रवृत्ति के कुछ न कुछ तो लक्षण जरूर होंगे, ऐसी ही अपेक्षा में मैं सोचता रहा था- यह आखिर



वही छापामार का लड़का है, जिसके हाथों से मेरे बहुत से सिपाही अपनी जान गवाँ चुके हैं। कितनी ही बहुएं बेवा बन गई हैं, सैकड़ों बच्चे अनाथ हो चुके हैं जिनका भविष्य अन्धकार है। मैं इस यथार्थ को याद कर आश्चर्यचकित होता हूँ कि यह उसी बाप का लड़का है, जो ताजे खून की नदियों में डूबी हुई लाशों को देखकर अट्टहास करता है। सरकारी बर्दी को फूटी आँख न देखने वाले और किसी भी सिपाही को जीवित देखना न चाहने वालों में से है इस लड़के का बाप।

गर्मी के भाप से भर गया है मेरा कमरा। मैं पसीने से सर्वांग भीग जाता हूँ। उस लड़के की निडरता और हमारे नियन्त्रण के प्रति उसकी बेपरवाही को मैं चैलेंज मानने लगा हूँ। शायद उसका बाप अपने बेटे के माध्यम से हमें हाँक दे रहा हो।

मैं खिड़की के बाहर उस लड़के को देखता हूँ। मेरी आँखों में अभी क्रूरता उभर आई है। उसके छापामार बाप द्वारा दी हुई मानसिक पीड़ा से उभर आई क्रूरता। उसके बालक के शरीर में मैं अपनी दृष्टि बोता हूँ, यह सोचते हुए की

“सर ! यह भी अपने बाप के सभी करामात जानता है। जमीं पे कैसे क्रॉलिंग की जाती है, और गोली की आवाज सुनने पर कैसे छिप जाना है, सब कमाल करके दिखा दिया। अब यह गांव लौट गया तो जरूर छापामार बनेगा, सर।”

इसके बाप को यदि मैं इस समय मिलूँ तो ऐसा व्यवहार करेगा मानो कोई भूखा भेड़िया अपने शिकार हिरण को मार गिराने उसके पीछे दौड़ा चला आ रहा हो। और यह लड़का भी तो अपने बाप के पद चिन्हों पर चलते हुए हमारे सिर काटने को किंचित् पीछे नहीं हटेगा।

मेरी दृष्टि में क्रूरता देखकर उसकी मां अपनी कोठरी के भीतर बेचैन होने लगी है। उसका मलिन चेहरा आतंक बन गया है। मैं देख रहा हूँ, वह ध्यान से मेरे शारीरिक हावभाव को देख रही है।

मेरी दृष्टि को भांप कर गार्ड धनबहादुर मेरे पास आ गया है। पैर पटककर सलाम ठोंकते हुए मेरा ध्यान अपनी ओर खींचना चाहता है- “सर, यह छापामार का लड़का तो बड़ा उदंड निकला।”

“हां ! मैं प्रश्रवाचक दृष्टि से उसकी ओर देखता हूँ।”

उसी लड़के की तरफ आँख लगाए वह कहता है- “सर ! यह भी अपने बाप के सभी करामात जानता है। जमीं पे कैसे क्रॉलिंग की जाती है, और गोली की आवाज सुनने पर कैसे छिप जाना है, सब कमाल करके दिखा दिया। अब यह गांव लौट गया तो जरूर छापामार बनेगा, सर।”

“हां!” मेरी आवाज में आश्चर्य मिश्रित निरीहता के भाव आने लगे हैं।

उस लड़के के मासूम चेहरे में मैं उसके बाप की क्रूरता दृढ़ता हूँ और यह सिपाही उसी चेहरे में व्यस्क छापामार

दृढ़ता है। हाँ हम दोनों की दृष्टि जो अलग है। मैं बीते हुए कल की सोच रहा हूँ और वह भविष्य की डींग हाँकता है। पर यह बात भी उतनी ही सही है कि मैं और वह सिपाही उस लड़के की उपस्थिति से मानसिक रूप से संतुष्ट हैं पीड़ित है। यह हम दोनों की अनुभूति है।

मैं आँगन में खड़ा हूँ। अब मेरे सामने वही लड़का सशरीर उपस्थित है। मैं सूक्ष्म दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देखता हूँ। उसका गोल-सा चेहरा और सिर बाकी अंगों से ज्यादा विकसित लगता है। उसके हाथ-पैर भी मजबूत दिखते हैं। वह एक मैला-सा हाफ बुसर्ट और एक दो तरफ पैबन्द लगी हुई चढ़ी पहने हुए है। उसके पैर नंगे हैं पर बलिष्ठ हैं, घुटनों और कोहनियाँ की चमड़ी खुरखुरी बन गई है।

मैंने उसकी आँखों में झाँककर देखा। वह भी बालसुलभ चंचलता से मेरी आँखों में झाँकने लगा और थोड़ी देर बाद खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसकी अबोध हँसी में उसके छापामार बाप के अट्टहास की कतई कल्पना नहीं कर पाया मैं। वह खिलखिलाता रहा और उसकी खिलखिलाहट में मैंने अपने बेटे की हँसती हुई तसवीर देखी।

मैंने उसके गाल थपथपाए और उसके छोटे-छोटे हाथ पकड़ते हुए कहा- “बेटे, तुम्हें यहाँ डर नहीं लग रहा ?” उसने सिर हिलाकर नहीं कहा। वह मेरी कमर में लटके हुए पिस्तौल को ध्यान से देख रहा था। फिर अचानक उसके हाथ ऊपर उठे और मेरी पिस्तौल की तरफ इशारा करते हुए उसने कहा- “मेरे पिता जी के पास भी है।”

“और क्या-क्या हैं, तुम्हारे पिता जी के पास ?” मेरे सवाल से एक पल तो वह चुप रहा फिर मेरे गार्ड की राइफल दिखाते हुए बोलने लगा - “वह भी है।”

“तुमने पिता जी से और क्या सीखा है, बेटा ?”

“बहुत कुछ। सब मालूम है। बताओ ? दुश्मन के आने पर कैसे छिपना है, कैसे उन्हें मारना है, सब कुछ सिखाया

है। दिखाऊँ क्या ?” ऐसा कहते हुए वह जमीं पर लेट गया और फिर कोहनी के बल अपने बदन को आगे सरकाने लगा। थोड़ी-सी दूरी पार करने के बाद उसने पैतरा बदला और एक पैर को मोड़कर दूसरा सीधा रखते हुए सरकने लगा। कुछ दूर पहुँचकर जोर से दौड़ा और पत्थर की दीवार की आड़ लिए एक तरफ छुप गया। अचानक उसने हमारी तरफ एक पत्थर फेंका और चिल्लाया- “धड़ाम...!”

“विस्फोट ! दुश्मन मर गए।” फिर उसकी खिलखिलाहट गूँजी। मैंने उसकी हँसी में वीभत्सता देखी। मेरे रोंगटे खड़े हो गए। शरीर ठंडा पड़ गया। वह छापामार का लड़का हमारे सामने निर्भर और निशंक छापामार युद्ध के कौशल प्रदर्शित कर रहा था।

उसकी मां को अपने बेटे की कारनामी पसंद नहीं आ रही थी। उसने वहीं से आवाज लगाई- “जल्दी यहाँ आओ।”

उस लड़के से छोटी मुलाकात के बाद मैं अपने कमरे में आ गया हूँ। सोचने लगा हूँ कि इस औरत और उसके बेटे पर कौन से कानून के तहत कार्यवाही करूँ। कानूनन बच्चे को मैं कुछ नहीं कर सकता था पर उसकी मां को कड़ी से कड़ी सजा कानूनन दी जा सकती थी। भले ही वह सीधे छापामार युद्ध में शामिल नहीं थी पर हथियार बगैरह जमा करने और मुखबिरी करने के काफी प्रमाण जुट चुके थे। उसे सीधे जेल भेजा जा सकता था।

वह उस कमरे में अपने बेटे को गोद में लिए सिर में हाथ फिरा रही है। उसकी आवाज भी मेरे कानों तक पहुँच रही है, लेकिन वह क्या कह रही है, मैं यकीनन नहीं कह सकता। वह अपने बेटे से

स्थानीय भाषा में बातें कर रही है। उसकी आँखों में बेटे के लिए ढेर सारा प्यार उमड़ पड़ा है। बच्चा भी मां के प्यार से अभिभूत हो रहा है। घर त्यागकर जंगल जा चुकी मां को अभी अपने बेटे की सुरक्षा की चिंता खाए जा रही है। उसके चेहरे में वही भाव हैं। अपने छापामार पति की वंश रक्षा के लिए वह औरत व्याकुल व अधीर है। बेटे को गोद में लिए अपनी आँखें बार-बार उठाकर मेरी तरफ देखती है। शायद सोच रही हो यह यहाँ का कमांडर होगा, और न जाने कैसी सजा मुकर्र करेगा, मेरे और मेरे बेटे के लिए। भविष्य में क्या होगा मेरे बच्चे ?

अचानक आँगन में साइकिल की घंटी बजाते हुए मेरा छोटा बेटा आया है। और साइकिल चलाते हुए आँगन के चक्कर मार रहा है। मैं देख रहा हूँ, उस कोठरी में कुछ हलचल हुई है छापामार का लड़का माँ की गोद छोड़कर खिड़की की रॉड पकड़े साइकिल पर सवार मेरे बेटे को देख रहा है। शायद साइकिल की घंटी का ट्रिं...ट्रिं और घूमते हुए पहिए उसके बाल मन को झंकृत कर रहें हों।

माँ की गोद को त्याग कर वह लड़का बाहर आ गया है। आँगन के कोने में बैठकर टकटकी बांधे वह आश्चर्य से मेरे बेटे को साइकिल चलाते हुए देख रहा है। पहिये की गति के साथ उसके चेहरे में भावनाओं की उथल-पुथल जारी है। मैं उसके चेहरे के रंगों के परिवर्तन से उसकी मानसिक स्थिति पढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि उसे साइकिल की सवारी करने की तीव्र इच्छा जाग उठी है, और इसी वजह से उसकी मांसपेशियाँ ऊपर-नीचे हो रही हैं।

फिर मैं देखता हूँ अचानक वह लड़का मेरे बेटे की साइकिल की तरफ

दौड़ा जा रहा है। वह अपने हाथ फैलाकर साइकिल पकड़ने की कोशिश करता है पर साइकिल की गति से तालमेल नहीं बैठा पाता। साइकिल तो छूट ही जाती है, वह वहीं गिर पड़ता है। वह लेटे-लेटे ही सरककर साइकिल के पहिए को पकड़ने की कोशिश करता है। पहिए को पकड़ तो नहीं पाता शायद पहिए से उसके हाथ में घाव लग गया है। इसलिए वह दहाड़े

“अपने दोस्त को भी साइकिल चलाने दो बेटा ! तुम लोग लड़ाई मत करो।”

अब वही साइकिल पहले की तरह ही आँगन में चलाई जा रही है। पर उसे चलाने में मेरे बेटे के साथ-साथ छापामार का लड़का भी शामिल है। मेरा बेटा उसे साइकिल चलाना सिखा रहा है। शायद तीन पहियों वाली साइकिल उसे कुछ आसान लगी है, वह पेडल पर पैर रखना

बम फैंककर ‘मर गया-मर गया’ चिल्लाने का नाटक करना। वह भूल जाएगा, बालचरित्र के खिलाफ उसे सिखाई हुई बातें। मैं अब महसूस कर पाया हूँ। वह जो हरकतें कर रहा था, वह अपने बाप से जन्मजात लेकर नहीं आया था। ये तो वो हरकतें थीं जो इस दिग्भ्रमित समय और विकृत परस्थिति की उपज थीं।

मैं उस कमरे की तरफ देखता हूँ। छापामार की बीवी अपने बेटे को देखकर मुस्करा रही है। बहुत दिनों के बाद मैंने उसके चेहरे पर खुशियाँ देखी हैं। अपने बेटे को खुश देख शायद उसके चेहरे पर खुशियाँ उभर आई हों।

बहुत दिन सोचने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुंचता हूँ कि छापामार रक्तबीज के अपराध की सजा उसकी बीवी और मासूम बच्चे को देना उचित नहीं है, बल्कि उन्हें सजा देना मानवता के विरुद्ध भी होगा। इसके अलावा छापामार के बेटे को मैं प्यार करने लगा हूँ। इसी आत्मबोध से प्रेरित हो मैं उन्हें सुरक्षित गाँव पहुँचाने का निर्णय लेता हूँ।

उन्हें गांव गए तीन दिन बाद खबर आती है कि दूसरे दिन ही छापामार कमांडर रक्तबीज आकर अपने बीवी और बच्चे को लेकर फिर जंगल में घुस गया है। इस खबर से मैं मर्माहत हो जाता हूँ। ऐसा महसूस होता है कि दिल फट गया है।

मुझे इस बात से ज्यादा पीड़ा पहुँची है कि हम उस छापामार के लड़के को भविष्य में छापामार बनने से रोक नहीं पाए।

वह लेटे-लेटे ही सरककर साइकिल के पहिए को पकड़ने की कोशिश करता है। पहिए को पकड़ तो नहीं पाता शायद पहिए से उसके हाथ में घाव लग गया है। इसलिए वह दहाड़े मारकर रोने लग गया है।

मारकर रोने लग गया है। पर उसकी दहाड़ में घाव से ज्यादा साइकिल पकड़ न पाने की हीनता ज्यादा है। मैं चुपचाप इस युद्ध के दृश्य देखकर यह सोचने लगता हूँ कि यह मेरी और छापामार के बेटे की लड़ाई न होकर मेरी और उसके बीच की वास्तविक लड़ाई है। लगता है हम दोनों साइकिल के लिए युद्ध कर रहे हैं। इसी लड़ाई में साइकिल के दो पहिए अलग होकर दो तरफ पड़े हैं। साइकिल पूर्ण रूप से बिगड़ गयी है, विकृत बन गई है। पर हम दोनों उसी विकृत साइकिल के पहिए से एक दूसरे पर क्रूर प्रहार कर रहे हैं।

“यह मेरी साइकिल है।” मेरा बेटा चिल्ला रहा है। छापामार का बेटा भी कुछ कम नहीं है- “यह साइकिल मैं चलाऊँगा।” मैं चौंक उठता हूँ। अभी-अभी मैं जो सोच रहा था, वही बात घटने जा रही है शायद मेरे बेटे और उस लड़के के बीच। मैं थोड़ा गंभीर बन जाता हूँ। जोर से पुकारता हूँ अपने बेटे को-

जान गया है। वह सीट पर बैठा है और मेरा बेटा कैरियर पर बैठकर उसे बता रहा है- “जल्दी-जल्दी चलाओ तो !.. तब न चलेगी।”

आँगन छोटा है फिर भी दोनों मजे से साइकिल चला रहे हैं। चक्कर मार रहे हैं। छापामार का लड़का साइकिल की सीट पर बैठा खिलखिला रहा है और मेरा बेटा कैरियर से उसकी पीठ थपथपाते हुए उछलकूद कर रहा है।

उस लड़के के चेहरे से कुछ देर पहले की ईर्ष्या, जलन और हीनता जैसे सभी भाव गायब हो गए हैं। मेरे बेटे के निर्मल चेहरे की तरह उसके चेहरे में भी अपना प्यार देखने लगा हूँ मैं।

छापामार के बेटे को इस तरह से साइकिल चलाते हुए देख मैं सोचने को विवश हो जाता हूँ। इसी तरह यह लड़का कुछ दिन और साइकिल चलाए तो अपने बाप से सीखे हुए सब युद्ध कौशल भूल जाएगा। वह भूल जाएगा पेट के बल सरक कर, आड़ लेकर, निहत्थे लोगों पर



“धूप”

एक अजगर सी चुप्पी दोनों के बीच पसर गई थी। रेखा जानती थी वह ऊँचा-ऊँचा बोलेगा, गालियां देगा और उसके सारे खानदान की खपच्चियां उधेड़ेगा।



परिचय : लम्बे अंतराल के बाद पुनः लेखन। एक कविता संग्रह 'शिखंडी युग' और दो उपन्यास, 'रेत की दीवार', 'सूरज नहीं उगेगा' प्रकाशित।

संपर्क : 246 Stratford Drive,
Broadview Heights, OHIO 44147

अब हम साथ नहीं रह सकते।

रेखा नहीं जानती थी कि ये शब्द कैसे अपने-आप आज निकले थे, जो विशाल तक पहुँचने से पहले उसके हाथ में पकड़े चाय के कप पर ठहर गये थे और चाय की ऊपरी सतह पर तैर रहे थे। चाय के कप की कंपन बढ़ गई थी। शायद इन शब्दों का भारीपन सतह पर बैठ नहीं पा रहा था।

दोनों की नज़रें मिली जैसे खाली कोटर हों और जिनका सब कुछ बहुत पहले ही झर चुका हो।

विशाल की आँखें उस ओर उठी और फिर जैसे हताहत पक्षी की तरह नीचे बैठती गई। सुबह-सुबह उसकी आवाज में जो रोष होता था, वह वहीं का वहीं झाग हो गया था। उसे लगा होगा कि वह शायद रोज कुछ ज्यादा ही कहता या झटकता रहा है।

चाय का कप धीरे-धीरे होंठों की सीमा तक पहुँचने से पहले ही थरथरा गया था और बिन-आवाज किए बीच की टेबल पर ढेर हो गया था।

एक अजगर सी चुप्पी दोनों के बीच पसर गई थी। रेखा जानती थी वह ऊँचा-ऊँचा बोलेगा, गालियां देगा और उसके सारे खानदान की खपच्चियां उधेड़ेगा। लेकिन विशाल ने कुछ भी नहीं किया। रोज-रोज की किचकिच का अगुआ आज बिल्कुल चुप्पी साध गया था।

वह उठी और पेटियों का दरवाजा खोल कर बाहर घास पर चक्कर काटने

लगी। विशाल की सुन्न पड़ी आँखें, उस के हाथ में ठिठकी-कांपती प्याली-बाहर उसके साथ चली आई थीं। वह चाहती थी इस समय वह उससे पूरी तरह कटकर बाहर खुली हवा में सांस ले सके लेकिन उसकी सांस रुक रही थी। चाय की प्याली अभी भी डगमगा रही थी।

उसे स्वयं मालूम नहीं था कि बिना किसी योजना के ये शब्द कैसे आज अचानक उछल कर बाहर आ गए थे। पर वह जानती है कि ऊपरी तैयारी से ज्यादा कहीं भीतरी तैयारी होती है जो अन्दर ही अन्दर कहीं पकती रही थी और बाहर खबर तक नहीं हुई। शायद यह उसी का नतीजा था।

अब उसे अन्दर की तैयारी के साथ-साथ बाहर की तैयारी भी करनी थी।

कुछ साल पहले के छोटू के शब्द, “आप को तलाक ले लेना चाहिए मम्मी।” “हट।” कहकर कैसे उसने छोटू को झिंझोड़ दिया था। “खबरदार! जो ये शब्द कभी भूल कर भी जबान पर लाया।”

शायद उस दिन से कहीं अंदर की तैयारी का बीज पड़ गया था।

आज की सुबह पूरी तरह से उठ चुकी थी। पिछवाड़े के झुटपुटों से बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी और अलसाई-अलसाई धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी।

रेखा ने बीती रात को बहुत पहले ही अपने पर से उतार कर अलग कर लिया था। वह अक्सर उठते ही सबसे पहले

नाइट-सूट उतार कर रात को अपने से परे धकेल देती थी। आज भी चाय बनाने से पहले, उसने यही किया था। पर लगा कि रात विशाल की प्याली से अभी तक चिपकी पड़ी है और सारे घर को भी घेरे हुए है।

मालूम नहीं विशाल क्या कर रहा है। वहीं बैठा है या उठ गया है। उसे नहीं लगा कि उसे यह जानने की कोई ज़रूरत होनी चाहिए कि वह क्या कर रहा है।

“आप को तलाक ले लेना चाहिए मम्मी। हट। कहकर कैसे उसने छोटू को झिंझोड़ दिया था। खबरदार! जो ये शब्द कभी भूल कर भी जबान पर लाया।”

जब साथ नहीं रहना तो यह जानने की इच्छा भी छोड़नी पड़ेगी।

दो कटे हुए हिस्सों को क्या पड़ी है कि वे जाने कि दूसरा हिस्सा क्या कर रहा है।

जब से वे इस घर में आए हैं तभी से वह विशाल से कहती रही है कि लॉन के

चारों तरफ लोहे की रेलिंग लगवा दें- प्राइव्हेसी रहती है। बच्चे खेलते हैं तो चिंता नहीं रहती। और स्वयं को भी कभी-कभी एकांत क्षणों की ज़रूरत पड़ती है। आज उस रेलिंग की सबसे ज्यादा ज़रूरत है। पर वह वहाँ नहीं है।

बेरोक-टोक सामने वाला आज उसके अंदर झांक तक सकता है।

बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें जिंदगी भर करने या पाने की सोचती रही है पर

कभी हासिल नहीं कर पाई। बिना पाए भी जिंदगी तो कट जाती है। कट गई। जैसे दूसरों की स्कीमों पर बने घरों में उम्र कट जाती है। अपनी मनपसंद की चौखट कभी मिल ही नहीं पाती। इसलिए दूसरों के बनाए हुए साँचों में ढले चले जाते हैं और अपना नापतोल भी भूल जाते

हैं। इस घर में कई चीज़ें ऐसी थीं जो रेखा को शुरू से ही पसंद नहीं थीं। जैसे घर में घुसते ही ड्राइंग रूम - बिल्कुल खुला - सपाट - पूरी तरह उधड़ा हुआ - नंगा।

आज क्यों लग रहा है कि सब कुछ कहीं नियोजित था।

वह कहती - तुम जानते हो कितने अमेरिकन हो गए हो।

अमेरिका में रहना है तो अमेरिकन होने में क्या बुराई है ?

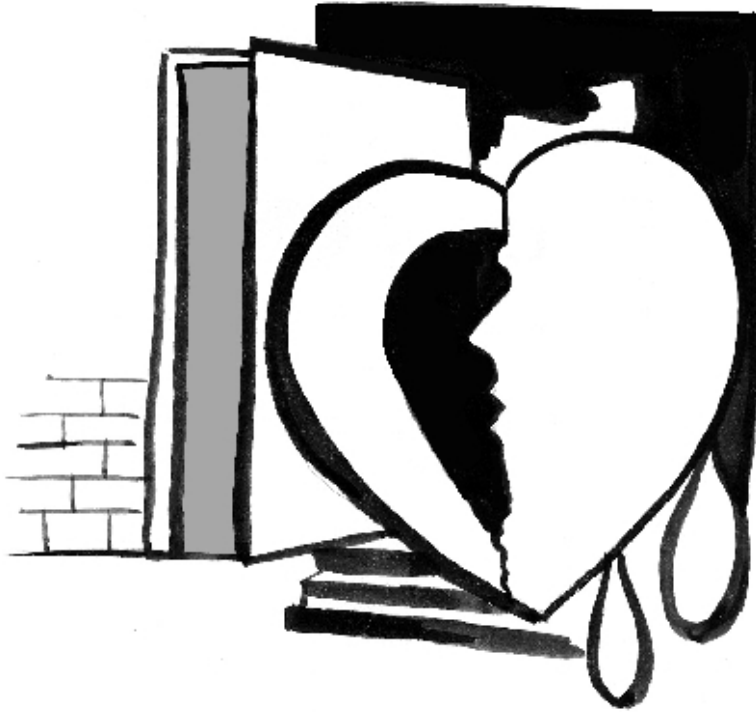
अमेरिका में सब कुछ अच्छा नहीं है।

ऐसा बुरा भी कुछ नहीं है।

दोनों में इस विषय पर अक्सर बहस होती रहती। विशेषतः विशाल बच्चों पर स्कूल से पहले और स्कूल के बाद-बाहर काम करने पर जोर देता। तब या कहीं रेस्टोरेंट में दोनों जाते और विशाल एक की बजाय दो अलग-अलग बिल मंगवाता। वह कहीं अंदर से टूट जाती और उसके मुँह का स्वाद कसैला हो जाता। उसका मन करता- उसी समय वहाँ से उठ कर चली जाए। कभी-कभी रेखा में हीनता की भावना इन बातों से इतनी गाढ़ी हो जाती कि वह अपने-आपको कोसती - वही बौड़म है- अभी तक अपने संस्कारों की जकड़ में जकड़ी है। ज़माने के साथ बढ़ नहीं पा रही है। उसके अपने अन्दर ये नोच-खसोट चलती रहती।

पर उसे लगता है धीरे-धीरे टूटते हैं तार। धीरे-धीरे ही टूटते हैं संबंध- यह लुहार की ठोक से नहीं- सुनार की ठुक-ठुक से ही बनते और बिगड़ते हैं। धीरे-धीरे भानुमति का कुनबा, न एक दिन में बनता है न और न एक दिन में टूटता है।

आज यह फैसला - जो अचानक एक ठोस निर्णय बन कर निकला, कहीं



अंदर पल रहे इसी ज्वालामुखी का विस्फोट था। आज किसी ठोस जमीन-आधार या सहारे के बिना भी यह निर्णय स्वयं डट कर उसके सामने खड़ा हो गया। अपने लिए या बच्चों की यदा-कदा सहायता करने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है। और विशाल से किसी तरह की कोई अपेक्षा रखना- दीवार में सिर फोड़ने वाली बात है। वह तो इतना स्वार्थी और स्वयंसेवी हो गया है कि घर में बने चिकन की बोटियां भी पहले अपनी प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं। पर उसे कोई फरक नहीं पड़ता। वह सड़ाप-सड़ाप बेशर्मी से खाता रहता है।

उसकी इकलौती मैगजीन- जो उसने यहाँ आकर, अपनी संस्कृति को कायम रखने के लिए चला रखी है, नितांत लंगड़ी है। उसके अधिकतर विज्ञापन भी विशाल ही लाता है और उनके पैसे बाहर-बाहर वसूल कर खर्च कर देता है। मैगजीन की कम्प्यूटर सेंटिंग, छापाखाना, बाइंडिंग आदि के बिल, वहीं के वहीं खड़े रहते हैं। हर बार जब नए अंक की तैयारी होती तो सभी बिलों के लिए उसे तंग करते और हिकारत और अपमानित नजरों से देखते। वह अपने में इतनी छोटी होती जाती- दिन पर दिन। काफी झिंकझिंक के बाद विशाल कुछ देता और आंशिक बिल देकर- गाड़ी आगे टिलती...। कई-कई दिन वह ऐसी किल्लतें उठाती और रातों को सो नहीं पाती।

विशाल पर, इस सबका कोई असर नहीं। उसने अब अपने आप में यह निर्णय ले लिया था कि अलग होकर वह इस मैगजीन को बंद कर देगी। अपने आप को कर्ज में और नहीं डुबो

सकती...। वह पढ़ी लिखी है कहीं भी छोटी-मोटी नौकरी करके अपना पेट-पाल लेगी और उसे मालूम है, बच्चे बड़े कर्मठ और मेहनती हैं, अपने बूते पर खड़े हो जाएंगे और हो रहे हैं। यों मैगजीन के माध्यम से वह राज्य के गवर्नर और अन्य बड़े ओहदे वाले लोगों को जानती है। बड़े-बड़े अखबारों के राइटर्स और सचिवों को पहचानती है, पर उनसे नौकरी नहीं मांग सकती...। मैगजीन बंद हो गई तो अपने-आप व्यक्तित्व का वह भव्य पहलू तिरोहित हो जाएगा। उस पहलू ने आखिर दिया भी क्या है...!

घूमते-घूमते वह घर के पिछवाड़े से सामने वाले लॉन में आ गई है। आसमान जैसे रात भर रोया है। सड़क धुली हुई-आर्द्र चुपचाप बिछी है लिथडने के लिए...। विलगता के अपने ध्रुव होते हैं, जिन्हें कभी तुम छू कर विगलित होते हो तो कभी निःसंग रहकर। दो धार की तलवार की तरह काटती है विलगता।

आँख में किरकिरी की तरह चुभते हैं वे क्षण, वे बीते हुए दिन-साल-महीने। जिन सालों-महीनों पर अमेरिका आने से पहले रेखा ने ढेरों उमंगों के महल गाड़ दिए थे। उन सब पर जैसे गाज गिर गई थी। उन सब अरमानों की जैसे किसी ने खटिया खड़ी कर दी थी।

सामने वाले घर की चिमनी का धुँआ थका-थका ऊपर उठ रहा था। बीच की बुर्जियों से आँख-मिचौनी खेलती धूप-धुएँ की उड़ान को चक-मक कर रही थी। पर चिमनी की बुर्जी का धुआं रोशनी को घुटकने की कोशिश कर रहा था।

उसका मन नहीं हो रहा था कि वह अंदर जाए और विशाल का सामना करे। ठहरे हुए जल में पत्थर मारने की उसकी

कोई इच्छा नहीं थी...। अच्छा था बच्चे घर पर नहीं थे। वह धीरे-धीरे अपना भविष्य तय कर रहे थे- कोई कहीं-कोई कहीं...। रेखा को इसी घड़ी का इंतजार था। पर दोहरा इंतजार विशाल के बदलने और न बदलने की उम्मीद का भी...।

अनचाहे सवालों की बेतरतीबियाँ उसके चारों ओर फैल गई थीं...। हाथ की लकीरें-दिशाओं के बदल जाने से बदल जाती होंगी। ग्रह-नक्षत्रों को न मानने से वे अपना प्रभाव नहीं छोड़ देते...। पूर्व से पश्चिम में आ गए...। इस पश्चिम का अपना पूर्व और अपना पश्चिम। जन्म-पत्रियाँ ही उल्टी हो गई थीं...।

फिर भी अन्दर तो जाना ही था। विशाल की प्रतिक्रिया जानना जरूरी था...। यह नहीं कि वह इस इंतजार में थी कि विशाल उसके समक्ष गिड़गिड़ाएगा- या माफी मांगेगा। ऐसी कोई अपेक्षा उसके मन में नहीं थी। इस समय उसका निर्णय अटल था, पर उस पर विशाल की मोहर चाहिए थी...। वह अपने वजूद को मजबूती से पकड़ कर रखना चाहती थी...। अपने इतने बड़े निर्णय को कागजी नांव की तरह डोलते नहीं देखना चाहती थी।

अन्दर आई तो विशाल ऊपर गुसलखाने में जा चुका था। गुसलखाने के बाहर, उसके कपड़े-तौलिया आदि रखे थे जो शायद पहली बार उसने खुद रखे थे...। वह आश्वस्त होकर नीचे उतर आई और कार की चाबी लेकर लाइब्रेरी के लिए निकल गई। उसे उसका उत्तर मिल गया था...।

धूप खुलकर चंदोवे की तरह उसके माथे को छू रही थी। ◆



देखते-देखते

गंगा हमारी खातिरदारी में निमग्न है। अपनी तमाम पौराणिक गुरुता भाव से आकंठ मुक्त कलकल बहती गंगा हम किशोर मेहमानों को देख भाव विभोर हुए जा रही है। हमें अपने सर्वोत्तम जल से स्नान करा रही है।



जन्म : 10.9.1959

ग्राम : लालूचक, भागलपुर, बिहार।

शिक्षा : पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातक।

प्रकाशित पुस्तकें : करील के कांटे, खादी में खटमल, मैं भी एक मनीषी हूँ (व्यंग्य संग्रह) तथा एक कहानी-संग्रह 'आहट' प्रकाशित।

देश की सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

कुछ रचनाएं, उर्दू, गुजराती एवं पंजाबी में अनुदित।

सम्प्रति : बिहार पशुपालन विभाग में सेवारत।

सम्पर्क : 'नील-धवल', दुलीघाट, दीवान मोहल्ला, पटना-800 008

बचपन से ही स्वप्न में आती रही है गंगा.....।

नहीं, तब कभी मातृरूप में नहीं देख पाया इसे। वह अवसरहाँ एक नटखट और रार मचाने वाली बालिका अथवा मददगार किशोरी के रूप में ही आती रही सपनों में। कभी चिढ़ाती, रूलाती तो कभी हँसाती, खिझाती। कभी-कभी तो डराती भी। हाँ, याद आया बहुत छोटा था, तब वह केवल और केवल डराती ही थी यह गंगा।

यह बरसाती पानी के बाढ़ से बौराई, गदराई और उपलाई गंगा ही थी, जिसे देखकर जीवन में पहली बार भय खाने जैसी कोई अनुभूति हुई थी। अपने विस्तार, प्रसार और तरंगों की रफतार से इठलाती ... कि ठठाकर अट्टहास करते हुए हम बच्चों को भयाक्रान्त करती गंगा। जब मैंने पहली बार इसके इस विराट उन्मादेनी रूप के दर्शन किये थे, महीनों गली में चलने वाले घघ्घो रानी कितना पानी जैसे मनोरंजक खेल के नाम पर भी सिटपिटाने लगा था।

लेकिन फिर थोड़ा बड़े होने पर गंगा का यही रूप भय की जगह कौतुहल पैदा करने लगा। तब हम गंगा के इस रूप को भूतनी या चुड़ैल की संज्ञा देते और प्रत्येक संध्या अपने दैनिक अनुभवों का आपस में विनिमय करते -

“आज मैंने एक गाय और भैंस देखा बहते हुए।”

“पता है, आज मल्लाहों ने नील गाय के एक जीवित बच्चे को छानकर निकाला। एकदम किनारे से होकर बहता चला जा रहा था।”

“और मैंने देखा एक बहता छप्पर ... और उस पर फण काढ़कर बैठे दो दो गेहुँअन।”

अमूमन सावन भादो के महीने में जब तेज पुरवा बहती रहती, गंगा अपने मटमैले जल में ऊंची उठती गिरती लहरों के बीच खरपतवार, जलकुम्भी और कई तरह के वनस्पतियों के साथ-साथ फूस का छप्पर, माल मवेशी और कभी-कभी तो आदमियों के शव तक बहा ले आती। तब नदी किनारे अपनी नावों और जालों की मरम्मत करते मछुआरे आस-पास के किसी गाँव के कटाव की चपेट में पड़ जाने का गहरा अफसोस देर तक प्रकट करते रहते।

लेकिन बरसात के इन दो तीन महीनों को छोड़कर गंगा वाकई हमारे जीवन की एक विशिष्ट सहचरी थी। तब हम स्वप्न में यही देखते कि हम गंगा के स्वप्न में इतराते जा पहुँचे हैं। गंगा हमारी खातिरदारी में निमग्न है। अपनी तमाम पौराणिक गुरुता भाव से आकंठ मुक्त कलकल बहती गंगा हम किशोर मेहमानों को देख भाव विभोर हुए जा रही है। हमें अपने सर्वोत्तम जल से स्नान करा रही है। अपने किनारे फलने वाले सबसे मीठे तरबूजों, खीरों, ककड़ियों और खरबूजों से हमें तृप्त करा रही है। भीषण उमस की रात्रि में भी हम ऐसे मजेदार सपनों में खोए देर तक खरटे भरते रहते। धूप चढ़ जाती, तब बाबू जी हमें झिंझोड़कर जगाते। बाबू जी अलस्सुबह इसके किनारे टहलने जाते। जब वह लौटकर आते, उनका माथा गंगाजल के बूंदों की तरह चमकता दिखता। एकदम से

समझ लो कि प्राणवायु मिलती है वहाँ ... जिसके माध्यम से अमृत प्रवेश करता है शरीर में। बाबू जी हमें प्रलोभन देने के साथ-साथ ललकारते ... धिक्कारते ... मगर ऊँ ... हूँ ... । कौन जाए सुबह-सुबह गंगा जी की ओर। घर की मुर्गी जो ठहरी ... दाल बराबर गंगा।

उन दिनों गंगा के किनारे होना हमारे दैनिक क्रियाकलापों के सबसे सुखद, सबसे अविस्मरणीय क्षण होते। शाम होते ही हम गंगा तट की ओर भाग छूटते। वहीं तरह-तरह के खेल जमते। कबड्डी चिक्का, फुटबॉल और कभी-कभी क्रिकेट भी। कुछ बड़े लोग भुरभुरी मिट्टी में कुश्ती जमाते। फिर तट पर बने एक सुनसान मंदिर में भांग छानते और घंटों वहीं गप्पें मारते रहते। भीषण गर्मी में हम तट पर खेलने की जगह गंगा के आंचल से जा लिपटते। यहाँ घुटने भर से लेकर कमर तक के पानी में हम खूब धमाचौकड़ी मचाते। मैंने इसी दौरान तैरना सीखा और जीवन का पहला रोमांच या कुछ कर दिखाने जैसा हौसला इसी गंगा ने ही मुझे दिया। वह जून महीने की एक शाम थी और हम आठवीं में पहुंच चुके थे। यानी कि मिडिल स्कूल की चहारदीवारी लांघ हाई स्कूल में। मन में वैसे ही जोश भरा रहता था। इसी जोश में गंगा के इस तन्वंगी रूप को देख हमने अचानक ठान लिया कि हम इसे तैरकर पार करेंगे। बाकायदा शर्त लग गई कि कौन उस पार को छूकर सबसे पहले इस पार आ पहुंचता है। हम कुल पांच जन थे। लेकिन एकदम शांत और पस्त सी दिखती गंगा के बीचो बीच पहुंचते ही हम हांफने लगे। हममें से तीन ने तत्काल लौटने का निर्णय लिया। वे लौट भी गए। केवल नसीम और मैं। वह हौसलेबाज था और मैं कहीं से भी उससे कमतर नहीं रहना चाहता था। आज भी जब कभी हम मिलते हैं, उस रोमांचक दिन की याद



जरूर ताजा कर लेते हैं। हम किसी तरह उस पार पहुंचे थे और वहीं जमीन पर लहालोट होकर आधे घंटे तक पड़े हांफते रहे थे। जब तक सांसे कुछ दुरूस्त हुई, शाम एकदम से घिर आयी थी। चटककर भूख लग चुकी थी, सो अलग। बदन का एक एक जोड़ दुख रहा था और पुनः तैर कर उस पार, घर जा पहुंचने की हिम्मत कहीं से भी पनप नहीं पा रही थी। अंततः उस पार हमारे न पहुंच पाने के कारण साथियों ने हमारे अभिभावकों तक संवाद पहुंचाया। देखते ही देखते पूरे मोहल्ले में अफरा तफरी फैल गई। क्या हिन्दू क्या मुसलमान दोनों तबके के बड़े बुजुर्ग घाट किनारे। एकदम से अंधेरा घिरने से पहले एक नाव अपनी ओर आती नजर आयी हमें। उस रात तमाम बुजुर्गों ने हमें बुरी तरह डांटा फटकारा लेकिन इस डांट फटकार का एक फायदा यह मिला कि घर में हम पिटने से बच गए। कान

पकड़कर उठक बैठक लगानी पड़ी, बस। लेकिन इसके एवज में हम घर और मोहल्ले के हीरो भी बन बैठे। अम्मां और जिज्जी ने उस रात रो रोकर खूब दुलारा, पुचकारा। उस रात भी स्वप्न में आयी थी गंगा। उसकी शक्ल मेरी किसी सहपाठिनी से मिल रही थी। पर किससे ... यह मैं तय नहीं कर पा रहा था। वह बिल्कुल जानी पहचानी लगती हुई भी सबसे अलग दिखी थी मुझे। उस रात गंगा ने मेरी खूब हिम्मत बंधायी। हिम्मत मर्दे मददे खुदा। अपनी पाठ्य पुस्तक में पढ़ा यह वाक्य मैंने स्वप्न में गंगा के मुख से भी सुना। और उसी रात इसका अर्थ पूरी तरह खुल गया मेरे आगे। स्वप्न में लगातार मुस्कुरा रही थी गंगा। मुझे लगा कि जाने से पहले उसने मेरे माथे को चूमकर मेरी कामयाबी के लिए दुआ भी की। इसके हफ्ते भर बाद मेरी कक्षा में ही पढ़ने वाली जरीना जब एक किताब

माँगने आयी, अपनी चुनरी के सीने से ढलकने की जरा भी परवाह न करते हुए उसने अपने सीने पर हाथ मारते हुए कहा था - “या अल्लाह । ... कहीं जो तुम डूब जाते तब ?”

शव को घड़े से बांधकर नाव द्वारा बीच गंगा में पहुँच उसे मछलियों के हवाले कर दिया गया था। उसी दिवंगता को, जिसके माथे पर काजल का दिठौना लगा, अम्मां और दादी ने अपने आंसुओं से नहलाकर जिसे विदा किया था।

“तब ... । ... तब क्या होता ?” - मैं शरारतन मुस्कुरा उठा।

“बता दूँ ... क्या होता ?” - उसने आँखे गोल गोल नचाते हुए चारों बगल का ज्ञायज्ञा लेते हुए पूछा। उसकी आवाज़ में एक अजनबी सी थरथराहट थी।

“हाँ ... हाँ ... अब बता भी दो न ।” - मैंने उसकी हिम्मत बंधायी।

“तब तो आज मैं भी डूबी रहती बच्चू ... । - कहकर लगभग झपट्टा मारते हुए उसने मुझे हडवडाहट में चूमा और किताब वहीं छोड़ भाग खड़ी हुई। मैं पुकारता रहा, मगर पलटी नहीं वह। और ठीक उसी समय मुझे अहसास हुआ कि हफ़्ते भर पहले वह दरहकीकत जरीना ही थी, जो गंगा के भेष में मेरे सपने में आयी थी। आज ही मैंने यह जाना कि डूबने में भी कैसे सुकून की प्राप्ति होती है। आज जरीना ने एकदम से मुझे डुबो दिया था। आज के बाद से डूबने के डर से उबर चुका था मैं।

आज जब यह सब याद कर रहा हूँ, पता नहीं कौन कौन से दुख सुख याद नहीं आ रहे हैं। गंगा का अभिन्न जुड़ाव हमारे जीवन के पल पल, क्षण क्षण से था। याद आ रही है मुझे अपनी सबसे छोटी बहन। वह केवल चार साल की होकर नहीं रही थी। एक दिन जब सुबह सोकर उठा तो ...। समूचे घर में कोहराम

मचा हुआ था। पिछले महीने भर से पीलिया से ग्रस्त होने के बावजूद उसकी तोतली भाषा कभी मंद नहीं पड़ी थी। तब मैं उससे पाँच वर्ष बड़ा था। लेकिन गंगा जी में उसे जल समाधि देने गए अपने

पिता के मित्रों के पीछे-पीछे मैं भी था। बाबू जी स्वयं नहीं गए थे। मैंने इन्हीं आँखों से देखा था वह कारुणिक दृश्य। शव को घड़े से बांधकर नाव द्वारा बीच गंगा में पहुँच उसे मछलियों के हवाले कर दिया गया था। उसी दिवंगता को, जिसके माथे पर काजल का दिठौना लगा, अम्मां और दादी ने अपने आंसुओं से नहलाकर जिसे विदा किया था।

उस दिन पहली दफ़ा नाव पर चढ़ा था। मगर नाव पर चढ़ने का वह प्रथम अनुभव और रोमांच गौण हो गया था और ...। ठीक जैसे कि बाबू जी की मृत्यु की सूचना पाकर हवाई जहाज पकड़ रांची से पटना आना पड़ा था। पूरे रास्ते अपने भारी और दुखते सर का वजन संभालते आँसू पोंछते मैंने यह घंटे भर की पहली हवाई यात्रा कैसे पूरी कर ली थी, आज इसका जरा भी रोमांच स्मृति में नहीं। लेकिन गंगा किनारे बाबू जी के चिता की चटकती लकड़ियों का एक एक मंजर मेरे जेहन में आज भी सुरक्षित हैं।

तो उस रात स्वपन में वही बहन आयी थी। खूब खिलखिला रही थी। किलकारी भरते हुए उसने बताया कि अब वह भी गंगा है। गंगा में समाकर गंगा। उसके पूरे शरीर में मछलियों की तरह सुफना (पर) उग आये थे। पैरों की जगह तो सचमुच मछलियों जैसी पूँछ

थी। वह सचमुच बेहद खुश थी। जैसे कोई हवा में उड़ान भरता है, ठीक उसी तरह वह पानी में कलाबाजियाँ करते हुए खुश हो रही थी। उसने चहकने जैसी आवाज़ में बतलाया कि यहाँ न कोई पीलिया और पोलियो है ना ही कालाजार या यक्ष्मा। यहाँ बस तैरना और बहना है। सदैव आगे बढ़ते रहना है।

देखते-देखते मेरे दिन भी सरकते आगे बढ़ने लगे। फिर तो इस गंगा ने एक से बढ़कर एक अद्भुत सुख और सुकून भी दिया। शौकत शय्या पर दुग्धधवल ... लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल जैसी काव्यमयी गंगा की निश्चलता को गर्मियों की चाँद रात में, अक्सर हमारी नौका के चप्पुओं की आवाज़ भंग करती रहती। दस रुपये फी घंटे के हिसाब से किराये पर ली गई नाव द्वारा दो घंटे के पारिवारिक आमोद प्रमोद का एक व्यस्त कार्यक्रम बन जाता। एक बड़ी बाल्टी में बर्फ मिले दही की लस्सी भी संग रखी जाती। नाव खेने वाले तक एक एक गिलास छककर तर हो लेते। इस कार्यक्रम की शुरुआत जीजा जी ने की थी। वह अपने हारमोनियम के साथ साथ बड़े भैया का तबला भी नाव पर रखवा लेते। गज़ल गायकी के नवसिखुओं की एक शानदार महफ़िल सज जाती। बाबू जी तक लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में के माध्यम से हमारी रूह में उतर जाते। और बीच बीच में अचानक पसर जाने वाली चुप्पी के बीच कोई अनाम सी प्रतिभा प्रस्फुटित हो जाती। केवल दसवें वर्ष को छूती हमारी भतीजी ने अजीब दास्तां है ये सुनाकर तब इसी तरह अपनी पहली उपस्थिति दर्ज कराते हुए हमें चमत्कृत और आशान्वित किया था। सबसे अन्त में बारी आती नाव खेने वालों की। उनके सुर के सम्मोहन से बंधी नाव धीरे धीरे तट की ओर आकर कब लग जाती, हमें पता ही न चल पाता। गंगा तट

पर बसे होने के कारण हम प्रत्येक वर्ष बहुत आसानी से यह सुख कई कई बार उठाते। जीजा जी और जिज्जी तो बच्चों समेत केवल इसी एक अनिवर्चनीय सुख की खातिर जयपुर और फिर भोपाल की अपनी भागमभाग जिंदगी से उबकर प्रत्येक वर्ष इतनी लम्बी दूरी को फलांगते, सबसे पहले पधारते। उनका साथ देने को किसी साल फूफा, कभी मौसा तो कभी कोई और। सबसे अधिक तो बाबू जी के दुलरूआ और अम्मा की आँखों की ज्योति – हमारे प्रिय मामा श्री। कई वर्षों तक वह गर्मियों में लगातार आते रहे। एक तो उनके शहर कानपुर की सूखी गंगा। तिसपर उनके मोहल्ले गोविन्द नगर से उतनी दूर। सो वह पटना की अपेक्षाकृत ज्यादा तंदरूस्त गंगा को मुग्ध भाव से निहारते रहते। तब गंगा छत से दिखती थी हमारे। अब नहीं। क्योंकि हमारे पड़ोसी का मकान तीन तल्ला हो चुका है। कुल्ला चाय के उपरान्त मामा जी मेरा हाथ थाम गंगा जी की ओर निकल जाते। लौटती में अजीबो-गरीब भोजपुरी और मगही फेंटकर बनायी गई अपनी मनोरोचक बिहारी बोली से वह घाट किनारे के उपजाऊ खेतों के मालिकों का इतना शुद्ध मनोरंजन करते कि हमारे दोनों हाथ ताजा सब्जियों को संभालने में अझुराए रहते।

मामा ज़बरदस्त बेसुरे थे। फिर भी नौका बिहार की एक संगीतमय संध्या में ज़बरन हस्तक्षेप करते हुए उन्होंने इसे अपने एक गीत से नवाजा। सबों ने हंसते खिलखिलाते हुए उनके हे गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो को बर्दाश्त किया था। उस वर्ष वह हमारी नई नकोरी मामी जी को लेकर आए हुए थे। अम्मा मामी को अपने संग ही सुलाती थीं। हमेशा की तरह मामा जी का बिस्तर बाबू जी के कमरे में लगवतीं।

लेकिन उस रात बाबू जी ने पहल

कर मामा मामी के लिए पृथक कमरे की व्यवस्था करवायी थी। सचमुच अजीब है यह गंगा। इतनी परिवारिक, इतनी हिली मिली ... कि इसे याद करो नहीं कि घर का कैसा कैसा अछूता प्रसंग सब नाटक की तरह सामने घटित होता प्रतीत होने लगता है। एक एक दुख ... हर एक तनाव ... सबको सोखा है इस गंगा ने ही। मैं अपने जीविकोपार्जन की दौड़ धूप से जब भी निराश होता, इसी गंगा किनारे एकांत में जा बैठता। वहां गंगा की विशाल जल राशि को देख अपने आंसू तुच्छ जान पड़ते। किनारे से बार बार टकराती लहरें पुनः और पुनः संघर्ष करने का जैसे संगीतमय पाठ पढ़ा जातीं। और इसी संगीत की अनुगूंज लिए मैं घर वापस आकर प्राण प्रण से पिल जाता।

फिर ऐसा हुआ कि अपना भविष्य संवारने को मुझे गंगा से दूर जाना पड़ा। इसी बीच कुछ लोगों को शहर का भविष्य संवारने की भी चिन्ता हुई। छोटा सा यह हमारा शहर देखते ही देखते महानगर में तब्दील होने लगा। आवागमन, जीवन की बुनियादी सुविधाओं और रोजी रोजगार की संभावना के चलते गाँव उजड़ते गए और शहरों में झुग्गी झोपड़ी का अंबार लगता गया। जहां भी खाली जगह नज़र आती रातों रात झोपड़पट्टियां बस जातीं। कम व्यस्त सड़कों के किनारे, पुल पुलिया के नीचे, पार्क या खेल के मैदान के वास्ते छोड़ी गई जगहों में ... और सबसे ज्यादा तो गंगा के किनारे किनारे। इन तमाम लोगों के लिए गंगा एक तरह से वरदान थी। वे इसी के किनारे नित्य कर्म से निबटते। यहीं कुल्ला दातून करते और फिर नहा धोकर इकट्टे पूरी तरह फ़ारिग होकर लौटते। घाट जाने के रास्ते के दोनों बगल दूर-दूर तक गंदगी और बदबू का ढेर पसरने लगा। प्रत्येक वर्ष बरसात में गंगा इन तमाम गंदगियों को समेटकर ले

जाती और फिर साल भर वही कार्यकलाप चलते रहते। देखते देखते गंगा किनारे गंदगी का एक विशाल साम्राज्य खड़ा हो गया। अब इस शहर के पुराने और शरीफ शहरी सुबह शाम की सैर सड़क पर, थोड़े बहुत वाहनों के बीच कर लेना पसंद करते, बनिस्पत कि गंगा किनारे जाने के। शाम में अब यहां अवैध शराब की भट्टियां चलने लगीं। नेपाल के रास्ते आने वाला तस्करी का सामान और गांजा, चरस आदि नाव द्वारा रात्रि में इन्हीं घाटों पर उतारा जाने लगा। अवैध हथियारों की खेप यहीं पर महीनों सुरक्षित रहती। शहर के जरायमपेशा लोग वारदात को अंजाम देने के बाद गंगा किनारे की इन झोपड़ियों में ही शरण लेने लगे। छुटभैये नेताओं की नेतागिरी यहीं पर खूब चमकने लगी। देखते ही देखते पूरा गंगा किनारा आवांछित लोगों के कब्जे में आ गया। अब शहर के आम नागरिक छठ जैसे महत्त्वपूर्ण पर्व पर ही गंगा के दर्शनों को आ पाते। इसके लिए भरपूर सफाई होती। चूने आदि का छिड़काव होता। फिर भी मुख्य रास्ते और घाट के आस-पास बदबू का हल्का भभका उठता ही रहता।

यह तो खैर गंगा के मलिन होने का दौर था। वर्षों तक रखने पर भी जिसके जल में कभी कीड़ा नहीं पड़ता कोई बदबू नहीं उठती, उस गंगा के लिए वास्तव में यह अग्नि परीक्षा का दौर था। लेकिन गंगा अब उतनी भोली और नादान भी नहीं रही थी। उसने सीता की कहानी सुन रखी थी। उनके नियति की साक्षी भी रही थी वह। सो उसने मन ही मन स्वयं को इससे अलग कर लिया था। इस वाहियात अग्नि परीक्षा से। और फिर गीता के कर्म और फल संबंधी शाश्वत वचन इसके किनारों पर अभी भी दुहराए जा रहे थे। रटू तोतो! गंगा विवश थी। शालीनतावश चुप थी। मगर फिर भी

लगातार बहे चली जा रही थी। केवल हम लोगों की खातिर। जैसे कोई बलकृत स्त्री इसी समाज में केवल अपनी संतान के वास्ते अपने अभिशप्त जीवन से उबरने को लगातार जीती और संघर्ष करती चली जा रही हो ...। लेकिन फिर लोगों का दिल इतने से भी नहीं भरा। देखते देखते गंगा किनारे बड़ी-बड़ी चिमनियाँ सुलग उठीं। विशाल और गहरे गड्ढे खोदे जाने लगे और भवन निर्माण के लिए ईट बनाने के वास्ते यही जगह सबसे उपयुक्त लगीं सरकार के कुछ खास प्रिय पात्रों को। अब गंगा किनारे छोटा नागपुर क्षेत्र से आए आदिवासी

उन दिनों स्वप्न में अक्सर एक भिखारन अपना कटोरा मेरी चौखट पर पटकती याचना करती नज़र आती थी। मैं यह भी देखता कि मेरी जेब में एक भी चिल्लर नहीं। अजीब रहस्यमय इत्तेफ़ाक होता यह। पर्स में केवल बड़े और भारी नोट। ... जो कहीं से भी उस भिखारन की लघुता के काबिल नहीं। नींद से जगने पर मैं खीझ उठता। कभी-कभी तो स्वयं पर ही दया आती। लेकिन उन दिनों कभी यह न जान सका कि सपनों में मुझ जैसे शरीफ शहरियों की चौखट पर मत्था टेकती वह दुखियारन दरअसल गंगा ही थी। उन दिनों गंगा के बारे में सोचने की

बावजूद, इन बदली परिस्थितियों में वह भी इस मकान और मोहल्ले में रहने को इच्छुक नहीं। यहां से आपका कार्यालय बच्चों के स्कूल, शॉपिंग मॉल, अच्छे रेस्टोरेन्ट और आधुनिकता के तमाम सरोजाम दूर जो पड़ने लगे हैं।

ठीक इसी समय क्षमता से अधिक बोझ लादे लगातार दो ट्रैक्टर गली से गुजरे। उनके पुराने इंजन का रोष से भरा शोर और ट्रॉलियों की खड़खड़ से पूरा घर जैसे कंपकंपा उठा। हमें बातचीत तक बंद करनी पड़ी।

“सबसे ज्यादा मुसीबत तो इन वाहनों से है,” छोटे की पत्नी घूँघट की ओट में बड़बड़ा उठी- “बच्चे पल भर को भी गली में निकल जाते हैं तो कलेजा दहल उठता है।”

सचमुच उस दिन कलेजा दहल उठा था मेरा भी। जिस गली में और जिस गंगा के किनारे कभी हम दिन रात खेल-कूद सकते थे, आज वहीं अपने बच्चों को बाहर निकालने में माएँ भय खाने लगी हैं ? और सबसे बड़ी बात यह कि इस बहाने आवांछित लोगों की आवाजाही और उनका हस्तक्षेप भी बढ़ गया है पूरे मोहल्ले में। मोहल्लेवासी अब घरों में दुबके रहते हैं और बाहर के तमाम सार्वजनिक स्थलों पर प्रकृति और पर्यावरण के इन्हीं दुश्मनों का दबदबा है।

शाम को मैं नसीम के घर जाकर उससे मिला। उसके घर की माली हालत कोई बहुत अच्छी नहीं थी। वह एक स्वयंसेवी संस्थान में अपनी नौकरी बजाते हुए किसी प्रकार अपनी गृहस्थी की गाड़ी खींच रहा था।

“अब बहुत सारे रसूख वाले पुराने लोग रहे ही कहां ? सब बेच बाचकर वहीं बस रहे हैं जहां जिसकी नौकरी है, पेशा है। दाम भी यह लोग उन्हें अच्छा दे रहे हैं।”

“लेकिन इन लोगों पर कोई कानूनी

शाम को अब यहां अवैध शराब की भट्टियां चलने लगीं। नेपाल के रास्ते आने वाला तस्करी का सामान और गांजा, चरस आदि नाव द्वारा रात्रि में इन्हीं घाटों पर उतारा जाने लगा। अवैध हथियारों की खेप यहीं पर महीनों सुरक्षित रहती।

मजदूरों के झोंपड़े भी आबाद हो उठे। अवैध शराब की भट्टियों का कारोबार और भी चमक उठा। जुए के छोटे मोटे अड्डों और सस्ती वेश्याओं का अभ्यारण्य बन उठा गंगा किनारा।

एक कारोबार चमका तो उससे बहनापा रखने वाले अन्य कारोबार भी इर्द गिर्द पसरने लगे। घाट किनारे अब बालू के ढाल भी खुल गए। छर्रियों और सीमेन्ट के एजेण्ट भी यही से अपना ग्राहक तलाशने लगे। अम्मा के दाह-संस्कार के बाद जब दसवां एवं एकादश का विधि विधान सम्पन्न करने घाट किनारे गया था, बड़ी मुश्किल से कोने में साफ सफाई कर ठाकुर ने जगह बनायी थी। जैसे तैसे विधि विधान सम्पन्न कर विवशता भरी दो डुबकी लगा जब हम घर पहुंचे, लगा किसी गंदे नाले से नहाकर आए हैं। घर आकर नल के नीचे साबुन से मल-मल कर एक-एक ने नहाया, तब जाकर कहीं लगा कि हम कुछ ठीक-ठाक हालत में आ सके हैं।

फुर्सत ही कहां थी ? नई नौकरी, नई बीबी और खरगोश की तरह इधर उधर फुदकते फिरते दो बच्चे। हम दो हमारे दो के इस उमंग भरे, हंसते, खिलखिलाते जीवन में किसी तीसरे की गुंजायश ही कहा था। फिर भला दाल भात में मूसलचंद की तरह कहां गंगा ... और आखिर क्यों गंगा ... ?

बल्कि अब अम्मा के नहीं रहने के बाद तो गंगा किनारे स्थित इस पुश्तैनी मकान को ही बेच देने के विषय पर गरमागरम बहस छिड़ चुकी थी। अब इस मकान से किसी का कोई भावनात्मक संबंध शेष रहा भी नहीं था। जिज्जी तक ने दबे स्वर में ही सही पर प्राप्त होने वाली रकम के एक हिस्से पर अपनी दावेदारी जतला दी थी। जीजा जी की शाबाशी भरी नज़रों ने उन्हें लगातार उकसाया था।

मैंने सबसे छोटे भाई की जानिब देखा। वह इसी मकान में रहता है। उसकी नौकरी भी इसी शहर में है।

कार्यवाही वगैरह ... ? तुम तो किसी एन०जी०ओ० के माध्यम से कुछ करवा भी सकते हो।”

“कोई फायदा नहीं। सब करके देख चुके हैं कुछ पर्यावरणविद और एन.जी.ओ. वाले।” -नसीम ने बुझे स्वर में कहा, “इनमें से कुछ लोगों के तमाम कागजात दुरुस्त हैं और सारे टैक्स भी नियम से जमा करते हैं यह लोग। फिर अपनी आड़ में कई लोगों को पनाह देकर नाजायज भी करवाते हैं। यह सब लोग काफी चालाक और ताकतवर लोग हैं।”

मैं निराश होकर अगली सुबह सपरिवार अपनी नौकरी पर लौट आया।

एक रात समाचार चैनलों के बीच छलांग लगाते हुए मैं बुरी तरह आतंकित हो उठा। एक चैनल पर एक जाने माने वैज्ञानिक ने सन् 2035 तक गंगा के पूरी तरह विलुप्त हो जाने की भविष्यवाणी की थी। जितना अधिक गाद भर चुका है इसके गर्भ में ... औद्योगिक एवं अन्याय प्रदूषण लगातार जिस तेजी से बढ़ते जा रहे हैं ... कुछ भी हो जाना असंभव नहीं। सुनने में तो यह भी आया है कि उत्तरांचल में बांध बँधने के कारण गंगा की मुख्य धारा भी काफी संकरी हो गई है।

इस समाचार से बुरी तरह आतंकित हो उठा था मैं। बचपन से अब तक की गंगा के बीच-बीच के कुछ दृश्यबंध मेरी आँखों के आगे तैरने लगते और मेरे आंसू निकल पड़ते। रात में सोते वक्त मैं बेहद बेचैन था। झपकी आती नहीं कि यही एक प्रश्न झकझोर कर फिर जगा देता - क्या सचमुच एक दिन विलुप्त हो जाएगी गंगा हमारे जीवन से ? जैसे इस पृथ्वी से एक एक कर बिला गए ढेर सारे पशु-पक्षी और वनस्पति समूह। मिट गई

पुराणों में वर्णित सरस्वती नदी। और देखते-देखते किसी ढोर डंगर की लाश को चट कर पूरे पर्यावरण को सुरक्षित रखने वाले हमारे महाबुभुक्षु गिद्ध!! क्या इसी तरह एक दिन सचमुच हमारी गंगा भी ? जैसे कि देखते ही देखते हमारी

खुद भी नहीं पता कि ये क्या-क्या खोने और क्या-क्या पाने जा रहे हैं!” मैं किसी मौका-ए-वारदात पर पकड़े गए मुजरिम की तरह लगातार सफाई पेश किए जा रहा था- “यह सब कुछ विकसित देशों की तर्ज पर हो रहे

इन बदली परिस्थितियों में मेरा छोटा भाई भी इस मकान और मोहल्ले में रहने को इच्छुक नहीं। यहां से आपका कार्यालय बच्चों के स्कूल, शॉपिंग मॉल, अच्छे रेस्टोरेन्ट और आधुनिकता के तमाम सरोजाम दूर जो पड़ने लगे हैं।

आँखों के आगे से ओझल हो गए टिहरी और हरसूद ... और और!

रात्रि के अन्तिम प्रहर में किसी तरह नींद आयी भी तो क्या देखता हूँ कि सपने में गंगा माई आ खड़ी हुई है। पहली बार मातृ रूप में देख रहा था इन्हें। करीब करीब सब दिवंगता अपनी अम्मा को मिलते जुलते रूप में। वैसी ही जर्जर काया, खिचड़ीनुमा खुले केश और श्वेतवसना। पहले तो मुझे यकीन ही न हुआ। लेकिन जब उन्होंने स्वीकारा कि मैं गंगा ही हूँ और अब मेरा यही रूप है, तो घबराकर मैं नजरे चुराने लगा। आखिर मेरे देखते ही देखते तो यह सब हुआ। जिस नदी के किनारे एक पूरी मानव सभ्यता निर्बल, आदिम और आखेटक जाति के रूप से विकसित होकर आज की सभ्यतम, परमाणु शक्ति से लैस एक शक्तिशाली मानव सभ्यता के रूप में उभरने का दम्भ पाल रही है, इसी ने केवल पिछले कुछ दशकों में ही इतनी गंदगी फैलायी कि...! मैं स्वयं को भी एक अपराधी मान नजरे चुराने की कोशिश कर रहा था जबकि गंगा के होठों पर स्थित वही पुरानी चिर परिचित मुस्कान मुझे लगातार बेधे जा रही थी....।

“इन्हें क्षमा कर देना माई! इन्हें

अंधाधुंध और अनर्गल विकास का दुष्परिणाम है माई... भूमंडलीकरण की राह पर आँख मूंदकर दौड़ पड़ने का नतीजा...!”

जबकि गंगा माई थीं कि लगातार मुस्कराए ही चली जा रही थीं। मेरे चुप हो जाने पर बोलीं- “विकसित देशों पर दोषारोपण कर क्या बच जाओगे तुम सब ? उनके यहां तो मिसिसिपि और टेम्स अब भी पहले की तरह ही बह रही है.... जबकि तुम्हारी दिल्ली में मेरी छोटी बहन युमना... उफ...!” और अचानक हिचकियाँ ले लेकर जोर से सुबकने लगी थीं गंगा माई....!

अब सपने में ही प्रार्थना कर रहा था- “मुझे अभागे की पत रख लेना हे माई! इसके पहले कि तू मेरी आँखों से ओझल हो, मुझे भी अपने संग किसी दूर देश को बहा ले जाना गंगे...! ... मेरी अस्थियों और राख को... जहाँ मेरे बाबू जी हैं.... अम्मा है... और जहाँ हमारे तमाम ऋषि, महात्मा, देव पुरुष... हर आम और खास...!”

सुबह नींद टूटने के बाद भी मैं कंपकपा रहा था। ◆



माहुर

शाम को चेला लोग चिलम तैयार करते थे। बड़े आग्रह से यदुनाथ मिसिर को बीच में बैठाया जाता था। यदुनाथ बाबा चिलम को दोनों हाथों की गदेली पर शाही अंदाज़ से दबा कर माथे पर लगाते और आसमान की तरफ घूरते हुए बुदबुदाते...



परिचय : पिछले 20 वर्षों से कथा-लेखन। देश की प्रायः सभी चर्चित पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित। 'पंखहीन' कहानी-संग्रह प्रकाशित कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य।
संपर्क : जीवन टी/257, अर्मापुर इस्टेट कानपुर, यू०पी०।
फोन : 05122215911

बिलेसर काका के ओसारे में मंडली बैठी थी। यदुनाथ मिसिर ढोलक सम्भाले थे। ढोलक की थाप पर झाल पकड़े मंडली मुड़िया कर पूरे वेग से फगुनई का लुत्फ उठा रही थी....

हो केकरे हाथे कनक पिचकारी केकरे हाथे अबीरा हो कोई रंग न डाले.... रंग ना डाले हो.... रंग न डाले... लक्ष्मन के हाथे अबीरा हो कोई रंग न डाले....

रात के नौ बज रहे थे। मौसम का मिज़ाज़ बदलने लगा था। दिन में खूब चटक धूप निकलने लगी थी। रजाई वाला जाड़ा अब सहम चुका था। मटर व सरसों की फसल ज्यादातर खेतों से निकल कर घरों तक पहुंच चुकी थी। बिलेसर काका का ओसारा यूं तो हमेशा आबाद रहता था। लेकिन यदुनाथ मिसिर फागुन में ही यहां दिखाई देते। वो ही क्यों। उनके चले-चपाटे भी तभी दिखाई देते थे। बाकी समय लोखरिया की दुकान और बउली के पास का बुढवा नीम का पेड़।

लोखरिया की दुकान पर जो भी जाएगा, क्या मजाल बिना यदुनाथ बाबा को भोग लगाये कुछ भी खा-पीले, “अरे भाई दू ठो चाय देना... आई बाबा तनि चाय पी लीं।”

बाबा नकुरियायेंगे फिर बोलेंगे, “द भाई द चेला ह आपन....”

और नीम का पेड़ तो पूरे जवार में

बदनाम था। वहां दो ही काम था... कौड़ी वाला जुआ और गांजा....

शाम को चेला लोग चिलम तैयार करते थे। बड़े आग्रह से यदुनाथ मिसिर को बीच में बैठाया जाता था। यदुनाथ बाबा चिलम को दोनों हाथों की गदेली पर शाही अंदाज़ से दबा कर माथे पर लगाते और आसमान की तरफ घूरते हुए बुदबुदाते...

चिलम चढे चुनमुनिया

ऊपर हम रहें नीचे सारी दुनिया

लगे दम मिटे गम

बोलऽऽऽऽ बमऽऽऽऽ

बोलऽऽऽऽ बमऽऽऽऽ

फिर उनकी मंडली जैकारा लगाती और एक लम्बा दम मारकर यदुनाथ मिसिर चिलम आगे बढ़ा देते। ढेर सा धुआं उनके फेफड़े में भरा होता जिसे आंख बंद किये धीरे-धीरे नाक से छोड़ते ‘बम भोले कैलाश पतीऽऽऽ... अउर तोड़ दिहे दुश्मन के नलीऽऽऽ....’ तब यदुनाथ मिसिर का चेहरा लाल भभूका हो जाता। कोई कमजोर दिल वाला देख ले तो डर के मारे घिघी बंध जाए।

एक नंबर के जांगर चोर आदमी थे.... पर देखने में ऐसा कदापि नहीं लगता। पांच फुट पांच इंच से भी थोड़ी ज्यादा लम्बाई। इकहारा बदन, सिर पर घुंघराले बाल जो अभी भी चालिस प्रतिशत से ज्यादा काले थे। लम्बी सुतुवां नाक के नीचे झब्बेदार मूँछ। रंग गेहुँआ... उम्र पचपन को लांघ

रही थी। जब भी गांव छोड़ते नील लगी कर चली जाए। जवार में बहुत हंसाई चकाचक सफेद धोती और वैसा ही वाली बात होने जा रही थी। अब कसूर सफेद टेरिकाट का कुर्ता ... गोड़ में बरातियों का भी नहीं था। गांव से एक ही

आजादी के बाद जाति की जो राजनीति की बयार बही तो मिश्रौलिया भला कैसे अछूता रहता। यहां भी नीला, हरा, पीला.... तिरंगा सबके फालोवर हैं। लेकिन नशे बाजों और जुआड़ियों की बस एक ही पार्टी थी। भले किसी की मीटिंग हो न हो उनकी मीटिंग रोज ही होनी थी। ताड़ी की दुकान पर हो या दारू की दुकान पर और नहीं तो नीम का बुढवा पेड़ जिन्दाबाद

‘बाटा’ का हवाई चप्पल। कोई चेला दिल्ली कमाने गया तो लौटते समय वहां से स्टील के फ्रेम वाला धूप का काला चश्मा लाया था। कुछ दिन तो वह खुद लगा कर घूमता रहा। अचानक एक दिन वह चश्मा यदुनाथ मिसिर के आँखों की शोभा बढ़ाने लगा। उनकी मंडली के लोग बता रहे थे, “हरिक्खन के नाके में दम क दिहलस बबवा। आखिर उतार के बाबा के थमा दिहलस - लीजिए महाराज पीछे छोड़िये। आपो अपने मान-प्रतिष्ठा का जरको ध्यान नहीं रखते। नान्ह जाति का उतरन ही पहिनना है तो पहिनिए।”

कोई कुछ भी कहे चश्मे में यदुनाथ मिसिर किसी पुराने जमाने के जर्मीदार लगते थे। वैसे भी यदुनाथ मिसिर के साथ यह कहावत प्रसिद्ध है- यदि मिश्रौलिया गांव की बारात है तो उसमें यदुनाथ मिसिर होंगे। यदि यदुनाथ मिसिर होंगे तो झगड़ा भी होगा और जब झगड़ा होगा तो दू-चार जन का सिर भी फुटेगा ही।

एक किस्सा बहुत मशहूर था। गाँव की ही बारात थी। तब जमाना इतना रफ्तार नहीं पकड़ा था। बारात दो दिन रुका करती थी। दूसरा दिन भी शांति से गुजर गया था। शाम हो गई थी। झगड़ा तो दूर मुंहाचाही भी नहीं हुई थी। यह तो सरासर मिश्रौलिया का अपमान था। साली बारात मउगों की तरह दुल्हन को विदा

दिन दो बारात सजी थी और मिश्रौलिया के रणबांकुरे उस दूसरी बारात में गए हुए थे। सूर्यदेव अस्ताचल में जाने वाले ही थे कि यदुनाथ मिसिर अपने चेलों के साथ पहली बारात निपटा कर आ ही गए। पता चला कि वहां भरी दुपहरिया में ही झगड़ा हो गया था। खीर खवाई में दुल्हा टुनका था तो यदुनाथ मिसिर गर्मा गए, “ये भी कोई बात हुई भला, साले भिखमंगे थे तो किसी भिखमंगे में लड़का खोजते.... कहां मिश्रौलिया के ब्राह्मणों के घर पहुंच गए। नीच हैं साले दरवाजे पर बुलाकर दुल्हे को लतिया रहे हैं। इन सालों को जूते से पीटना चाहिए....”

बस फिर क्या था हो गया दू-दू हाथ... यदुनाथ मिसिर को तो कुछ नहीं हुआ, पर बीच-बचाव में एक चले का सिर फट गया था। बजुर्गों ने राहत की सांस ली, ‘चलो कोरम पूरा हुआ।’

“लेकिन लगता है कि यहां कुछ नहीं होगा। घराती पूरे गउ हैं। न दान दहेज में कवनों लफदर और ना ही स्वागत सत्कार में ही कवनो हीला-हुज्जत.... इहां त यदुनाथ मिसिर की दाल नाही गलेगी।”

“भक बुरबक, देखते जाओ... यदुनाथ मिसिर आ गए हैं तो दो चार का कपार फूटेगा ही। अरे इ माहुर हैं जो अपने बाप का सिर फोड़ने से भी नाही चुकेंगे। देखते नहीं हो, बुढौती में भी

शास्त्री जी बेटे का नाम सुनते ही कैसे भुसौला में जान बचाकर भागते हैं।”

वही हुआ। रात का भोजन शुरू हुआ। जैसा कि प्रचलन में था। ब्राह्मण सिला हुआ वस्त्र उतार कर ही भोजन करेगा। यह बात दूसरी थी कि नई पीढ़ी यह सब टिकटिम्मा नहीं करती। ऐसी ही मिली-जुली सरकार वहां भी थी। कुछ खाने वाले और कुछ खिलाने वाले शर्ट-पतलून पहने खा-परोस रहे थे। यदुनाथ मिसिर का माथा चनका, “इ साले किसी बाभन का घर है कि क्रिस्तानी का... सालों को जरा भी संस्कार का ध्यान नहीं। लदर-फदर जैसे हैं खिला दो। मिश्रौलिया वाले ठहरे सज्जन सो बर्दाश कर रहे हैं। लेकिन साला सहने की भी कोई सीमा होती है। इ त उ लोग हैं जो खाली जूते की बोली ही समझेंगे...”

“जियो शेर डटे रहो” पंगत में से कोई चटकार मारा।

यदुनाथ मिसिर का हौसला बढ़ा। मुंहा चाही शुरू हो गई तो मार होने में कितना समय लगता।

वैसे भी मिश्रौलिया के बारे में पूरे जवार में एक कहावत प्रचलित थी। ब्राह्मण की खोपड़ी से उपजा है यह गांव। एक से एक अधिकारी अगर इस गांव में पैदा हुए हैं तो इलाके के हिस्ट्रीसीटर गुण्डा और बदमाश भी इसी गांव के मिलेंगे। विद्वान और चूतिया दोनों यहां एक ही घर में पैदा हुए हैं।

ब्राह्मणों का गांव है। पचहतर प्रतिशत ब्राह्मण, बीस प्रतिशत बैकवर्ड और बाकी अनुसूचित जाति के लोग। आजादी के बाद जाति की जो राजनीति की बयार बही तो मिश्रौलिया भला कैसे अछूता रहता। यहां भी नीला, हरा, पीला.... तिरंगा सबके फालोवर हैं। लेकिन नशे बाजों और जुआड़ियों की



बस एक ही पार्टी थी। भले किसी की मीटिंग हो न हो उनकी मीटिंग रोज ही होनी थी। ताड़ी की दुकान पर हो या दारू की दुकान पर और नहीं तो नीम का बुढवा पेड़ जिन्दाबाद ... और उनकी अगुआई के लिए यदुनाथ मिसिर तो वहां बैठे ही थे।

यदुनाथ मिसिर कब घर जाते थे किसी को पता ही नहीं। वैसे उनका संयुक्त परिवार था। खुद यदुनाथ मिसिर की तो कोई संतान थी नहीं। हां छोटे भाई का भरा-पूरा परिवार था। उसी परिवार के सहारे ही मिसिर जी की गाड़ी भी खिच रही थी। औरत हमेशा बीमार ही रहती थी। उसकी बीमारी के मूल में भी उन्हीं का हाथ था। बहुत बड़े खानदान की लड़की थी वह। पिता कलकत्ता में अध्यापक हुआ करते थे। सीधे-सादे सरल स्वभाव के मास्टर साहब भटकते-

भटकते मिश्रौलिया पहुंच गये और गलती से टकरा गए थे- पंडित भूखल शास्त्री से। पूरे मिश्रौलिया में एक ही थे शास्त्री जी। कुछ दर्जा पढ़ लिए थे। कहीं से 'शास्त्री' की उपाधि झटक लिए थे। मां-बाप ने तो नाम बिगाड़ दिया था। फूल-पत्ती लगा कर उन्होंने नाम को प्रभावशाली बना लिया। दीवानी के वकील के यहां मुंशी का काम करते थे।

उन्हीं पंडित भूखल शास्त्री के चुंगल में आ फंसे मास्टर साहब। मिश्रौलिया का आधा खेत शास्त्री जी अपना बता कर घुमा दिये, "3 सीसम का पेड़ लउक रहा है.... उहां से लेकर वोSSS वोSSS जो पोखरा है... उहां तक सब अपने हैं.. हां..हां उ पोखरा भी अपना ही है... तीस बीघा से उपरे होगा.... दू ठो लड़के हैं... उनका भर के लिए बहुत है...."

यदुनाथ मिसिर उस समय चौदह

साल के थे। बड़े धूम-धाम से कलकत्ता वाले मास्टर साहब के घर गई थी बारात। शास्त्री जी की बड़ी बहू बन कर आई थी मास्टर साहब की बेटी। पहला आघात उसे तब लगा जब उसने घर में प्रवेश किया। बाहर से जो घर देखने में पक्का मकान लग रहा था वह अंदर से पूरा खपड़ैल था। सिर्फ बाहर का ओसारा ही पक्का था।

यदुनाथ मिसिर थे बज्जर देहाती। शहर तो दूर कस्बा भी नहीं देखा था। आठवीं में पढ़ते थे। पढ़ाई तो बस कहने भर की थी। दिन भर लंठई के नए-नए तरीके ढूंढा करते। घर में लक्ष्मी का आगमन जोरों पर था भूखल शास्त्री दोनों हाथों से नोट बटोर रहे थे। छः-सात बीघा जमीन भी थी ही। सब कुछ चकाचक था। कलकत्ते वाली बहुरिया के सामने यदुनाथ महाराज को जाने में शर्म महसूस होती। थोड़ी व्यवहारिक ज्ञान की कमी भी थी। पति धर्म के निर्वाह में विलम्ब ने बहुरिया को विचलित कर दिया। उसका भांडा तब फूटा, जब वे एक समारोह में सम्मिलित होने ससुराल पहुंचे। बहुत दिनों तक विचलित रहे थे- 'ओह इतना अपमान! साले लोग क्या समझते हैं। दरवाजे पर बुला कर किसी को भी बेइज्जत कर दो।'

पूरा किस्सा था भी काफी शर्मनाक। कलकत्ते वाली बहुरिया ने अपनी मां से कह दिया था "आज तक मुझसे बात ही नहीं किए। मुझे देखते ऐसे घबराते हैं जैसे भूत देख लिया हो। अम्मा मुझे तो बड़ा अजीब सा लगता है उनका व्यवहार...."

बुढ़िया ने अपने अनुभव से यही जाना कि लड़के के पौरुष में ही कोई गड़बड़ है। नहीं तो आजकल के लड़के तो इतने खिलाड़ी हैं कि मेहरिया आते ही चारपाई तोड़ डालें। घर की औरतों से

तैरती हुई बात मर्दों के कान में भी जा पहुंची। सब हक्के-बक्के। उस समय कलकत्ता वालों के घर बेटे का विवाह ठना था। रिश्तेदारों का आगमन जारी था।

उनके बारे में यही कहते, “हमारे महाराज का तो बस यही कहना है— मस्तराज मस्ती में, आग लगे बस्ती में...” और यह सच भी था।

मस्सा फूटा नहीं कि इश्क की गिरफ्त में आ गये। इसके पहले इज्जत-पानी पर बट्टा लगाते, शास्त्री जी ने समय की नब्ज पहचाना और भृगुनाथ बाबा का विवाह कर डाला।

यदुनाथ मिसिर भी ससुराल जा पहुंचे। बस क्या था... पूछताछ... शिकवा-शिकायत से बात शुरू हुई और गम्भीर स्थिति तक पहुंच गई। उनके मौसिया ससुर, जो अपने को ज्यादा काबिल समझते थे पहले बातों-बातों में जानना चाहा। मिसिर बाबा सुनकर आवाक, हंसी समझकर झेंपें, फिर बात को टालना चाहा। वो जितना टालते, ससुराल वालों का अपना शक पुख्ता होता जा रहा था। अंत में फुल व फाइनल निर्णय के तहत उनकी धोती खोल कर भौतिक सत्यापन किया गया। सब कुछ ठीक था। लोग क्षमा मांगते रहे। लेकिन अंदर तक अपमान से भीगे यदुनाथ मिसिर ने पत्नी के सामने कसम खाया, “जिस चीज के लिए तुमने भरे समाज में मेरा अपमान कराया, उसके लिए अब सारी जिन्दगी तुम तरसो... नहीं तो अपने बाप से कह कर दूसरा घर ढूंढ लो... अब यदुनाथ मिश्र वल्द पंडित भूखल शास्त्री, जिस दिन तुम्हारी देह छूएंगे उसी दिन समझो कोढ़ी हो जाएंगे।”

उसके बाद से यदुनाथ मिसिर का घर से मोह भंग हो गया। भूखल पंडित को बड़े बेटे से निराशा ही हाथ लगी। चाहते थे पढ़-लिख कर वकील बने, लेकिन वकील तो दूर मैट्रिक में ही उनकी सारी ऊर्जा समाप्त हो गई। देखते-देखते वो गांव के लोफरों के सरदार बन कर रह गए। उनकी मंडली के लोग

भूखल पंडित सारी जिन्दगी वन टू का फोर करते रहे। उनकी दो बातों की पूरे जवार में चर्चा थी। पहला उनके माथे पर लगा टीका। खूब गोल... बड़ा सा सफेद चंदन का टीका... आधा ललाट ढक लेता... उस टीके के बीचों-बीच रोली का छोटा टीका... ‘शिव की तीसरी आँख हवे... जेकरे उपर उठ गइल... उहे सार कोरट-कचहरी के चक्कर में बन गइल घनचक्कर...’

दूसरी थी शास्त्री जी की जांघ... जहां कहीं घूंघट वाली औरत देखें लगते जांघ खुजाने... ‘जेतना लम्बा घूंघटा ओतना तेज शास्त्री जी का जांघ खुजाता...’

जवानी में कभी किसी से दबे नहीं। भले ज्यादा कानूनी ज्ञान नहीं था उनके पास पर कोर्ट-कचहरी की हनक तो थी ही। बड़े बेटे से निराशा होने के बाद छोटेके भृगुनाथ पर आशा टिकाये थे ‘उहे लायक बन जाय।’ शास्त्री जी तो भरसक कोशिश किए लेकिन उखाड़ भृगुनाथ मिसिर भी कुछ ना पायें। मस्सा फूटा नहीं कि इश्क की गिरफ्त में आ गये। इसके पहले इज्जत-पानी पर बट्टा लगाते, शास्त्री जी ने समय की नब्ज पहचाना और भृगुनाथ बाबा का विवाह कर डाला। अब भृगुनाथ मिसिर किताब-कलम से नाता तोड़ घर-गृहस्थी में रम गये। यह बात दूसरी थी कि शास्त्री जी की धर्म पत्नी दो पतोहू का सुख बहुत दिन तक न

उठा सकी। दमा की पुरानी मरीज थीं। दम उखड़ा तो वापस नहीं आया। शास्त्री जी का जांगर भी थकने लगा था। अब इतनी ताकत कहां थी कि रोज-रोज कचहरी भागते। भृगुनाथ के बच्चों में अपना सपना टटोलने लगे थे।

जवानी में नाक पर मक्खी न बैठने देने वाले शास्त्री जी का बुढ़ापे में यदुनाथ मिसिर के नाम से तिरपन कांपता था। एक तो यदुनाथ मिसिर दरवाजे पर आते नहीं थे और जब आते थे तो भूखल पंडित सीधे भुसौला में ही भागते। सैंकड़ों गाली... एक से बढ़कर एक अश्लील.... कोई भी शरीफ आदमी सुने तो कान में अंगुली डाल ले। लेकिन क्या मजाल था घर का कोई आदमी चूं तक कर दे और भूखल बाबा तो तभी भूसा से बाहर पैर रखेंगे, जब यदुनाथ मिसिर दुआर से अपना डेरा डंडा उठा कर लोखरिया की दुकान की तरफ चल देंगे। यह नाटक महीने में एकाध बार तो होना ही था।

मंडली में से कोई चेला कभी समझाने की कोशिश करता, “जाय देओ गुरु.... बाप हैं.... काहें बुढ़ापे में सता रहे हो। अब अउर केतना दिन जीयेंगे।”

यदुनाथ मिसिर बिफर जाते, “साला बुढ़वा बहुत पाजी है। हमारे जिनगी में माहुर बो दिया। उसी साले के कारन हम आदमी से घन चक्कर बन गये। कुक्कर जैसी जिन्दगी बन गई। हम कोई शिव थोड़े हैं कि माहुर पी कर अमृत दूसरों के लिए छोड़ दें। अरे हम तो साधारण मानुष हैं। माहुर पियेंगे तो माहुर ही उगलेंगे...” और कहते-कहते न जाने कहां से आंसुओं का सैलाब उनकी आंखों से बह निकला था।

मंडली भौचक्क, “अचानक इ बबवा को का हो गया।”

घावों का पोखर जो उनके अंदर वर्षों

से सूखा पड़ा था। उसमें अचानक बाढ़ आ गई थी और उसका पानी अपनी सीमा रेखा लांघ गया था। यदुनाथ मिसिर के अंदर भी इतना दर्द था, उनकी मंडली के लोगों ने कभी सोचा भी नहीं था। फिर कभी किसी ने बाप के गरियाने के लिए उन्हें नहीं टोका। भूखल पंडित मरने तक बेटे की गालियां सुनते रहे।

बाप के मरने पर भी यदुनाथ मिसिर बहुत रोये थे। जिस बाप को हमेशा गरियाते रहें हो उसी के लिए ऐसा विलाप। बात सबकी समझ से परे थी। लेकिन सामने सच खड़ा था। पूरे नेम धरम से बाप का श्राद्ध किया। खुद ही मुखानि दिया... रोज नियम से गरुण पुराण का पाठ करते... पिण्ड दान किया... और उन तेरह दिनों न चिलम छूआ और न ही कोई और नशा-पानी...

बाप के मरने के बाद यदुनाथ मिसिर बहुत जल्दी चुचुवा गए थे। उनकी कमर भी थोड़ी झुक गई थी। थोड़ा बढ़ती उम्र और ऊपर से बदपरहेजी... आंखें धंसने लगी थीं। अब चिलम का धुंआ भी उतनी जोर से अंदर नहीं खींच पाते थे। हमेशा मस्त रहने वाले यदुनाथ मिसिर अब बात बे बात खीझने लगते, “माधर... मिश्रौलिया को डूबाने वाले यहां के बाभन हैं। बनेंगे समाज के ठेकेदार लेकिन जब कहीं मान प्रतिष्ठा की बात आयेगी तो मेहरारू के लुग्गा में घुसर जाएंगे। ना तो सालों की कोई इज्जत है ना सोच.... अरे छोटका सबों से सीखो.... केतना एका है... जरा सा तू तमाड़ कर के देखो... सब एक हो जाएंगे। खुद तो लतिआयेगे.... थाना-पुलिस से भी डंडा डलवा देंगे...”

मंडली बोलती, “बबवा पगला गया है। खाली ऊल-जलूल बकता रहता है। भूखल महाराज की आत्मा एकरे शरीर में

दुक गई है। नाहीं तो अच्छा-खासा इंकलाबी आदमी जाति-पांति की बात काहें करने लगता। वैसे भी दूर से देखो तो यही लगता कि पंडित भूखल शास्त्री ही आ रहे हैं....”

यदुनाथ मिसिर धीरे-धीरे लोखरिया की दुकान छोड़ दिये। नीम पर का भी अड्डा नाममात्र का रह गया था। या सच कहा जाय तो मिश्रौलिया में ही उनका डेरा-पानी कम ही रहता। ज्यादातर समय उनका गाँव के बाहर कटता। लोग-बाग में तो यहां तक चर्चा थी कि यदुनाथ मिसिर बनारस जाते हैं। कोई महाराज जी के आश्रम में.... भगवत भजन करते.... इ लोक तो नष्ट हो गया... लेकिन वो लोक तो बाकी है.... बड़ा ज्ञान-ध्यान की बातें करने लगे हैं यदुनाथ मिसिर- गीता में कहा है जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है वैसे ही आत्मा पुराने देह को त्याग कर नया शरीर धारण कर लेती है... वासांसि जीर्णानि यथा विहाय... नवानि गृह्णति नरोऽपराणि.... तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही...

यह यदुनाथ मिसिर का नया रूप था। लेकिन सच तो कुछ और था। यदुनाथ मिसिर के जांघ पर एक फोड़ा हो गया था। बताते हैं जिस दिन भूखल शास्त्री मरे थे उसी दिन उनकी जांघ पर खजुआहट हुई थी। वहीं पर एक फुंसी हो गई और तेरहीं समाप्त होते हवाते फुंसी फोड़े में बदल गई थी।

‘बाप रे SSS ... एतना बड़हन फूका SSS ... जइसे जांघ नाहीं श्यामा लौकी... पूरा पाथर जइसन SSS ...ओहीसे यदुनाथ महाराज का देह सूखत जात बा SSS’

यदुनाथ मिसिर बनारस में किसी आश्रम में नहीं जाते थे। मेडिकल कालेज जाते थे। फोड़े के इलाज के लिए... कैसर

हो गया था। दूसरे चरण में पहुंच चुका था मर्ज। सिकाई हो रही थी। बहुत पैसा खर्च हो रहा था और जांघ थी कि फूलती जा रही थी। अब यह कोई चोरी छिपा की बात नहीं थी। पूरे जवार में यदुनाथ मिसिर की बीमारी की चर्चा थी।

‘सारी जिनगी जांघ खुजावत रहलें भूखल.... अ फूका हो गइल यदुनाथ के... करम गति टारे न टरी SSS हो रामा SSS’

यदुनाथ मिसिर का सारा नशा-पानी बंद हो चुका था। नियम-धरम से रहने लगे थे। चाहे कोई कुछ भी समझे लेकिन उनकी मंडली के लोग तो यही कहते, “उ का सुधरेंगे परिस्थिति सुधार दिया। डाक्टर साफ बोल दिया है- जीना चाहते हो तो नशा-पानी बंद... भगवान पर भरोसा रक्खो... सब ठीक होगा”

ठीक का होगा कदुआ.... कोई मामूली फोड़ा थोड़े है... इ कैसर है भाई ... जान ले कर ही छोड़ेगा

यदुनाथ मिसिर भी यह बात अच्छी तरह जान चुके थे। धीरे-धीरे सब कुछ छूट गया। यार-दोस्त... मंडली... लोखरिया की दुकान... बउली का नीम का पेड़.... सब कुछ..... रह गया तो घर के ओसारा का आम की लकड़ी का तख्त, जिस पर बैठे दिन भर रामायण बाचा करते-

राम राज अभिषेकु सुनि हियैं हरषे नर नारि।

लगे सुमंगल सजन सब विधि अनुकूल बिचारि ॥

वही कलकत्ता वाली जिसके न छूने की कसम खाये थे। जो सारी जिन्दगी गीली लकड़ी की तरह सुलगती रही... जिसकी खुद की देह सूख कर कांटा हो चुकी थी.... रात-दिन उनकी सेवा में रहती।

देखने वाले तो यहां तक बताते हैं कि जब वह यदुनाथ मिसिर की मालिश करती तो महाराज जी उस समय भी अपने मक्कारी से बाज न आते आंख बंद करके लगते अपने पंडिताई का रोब झाड़ने, “भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है- इस आत्मा को न शस्त्र काट सकता है, न ही आग जला सकती है, इसे जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती... नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः... न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥”

और तब कलकत्ता वाली की आंखों से झरझरा कर आंसू बहते। बस यही लगता कि वह भी थोड़ी देर में पानी बन कर बह जाएगी। लेकिन न ही कलकत्ता वाली को पानी बनना था और न ही यदुनाथ मिसिर को इतनी जल्दी इस जीवन से छुटकारा मिलना था।

महीना दर महीना बीतता जा रहा था। लोग बाग के लिए अब यदुनाथ मिसिर किस्सा-कहानी की बात बनते जा रहे थे। मंडली तो अब भी थी, लेकिन सरदार बदल गया था। मिश्रौलिया से बारात भी सज रही थी, पर पहले जैसा नहीं था। एक दिन की बारात होने लगी थी। मरजाद नहीं तो गीत-संगीत भी नहीं

था। बाराती लड़की वालों का दुआर छू कर भागने के चक्कर में होते... कपड़ा कौन चलावे ‘नक्का पार्टी’ तो जूता पहिने बैंड बाजा वालों की पांति में भोजन कर लेती...

उस साल गर्मी का रिकार्ड टूट गया था। देखते देखते धान की खड़ी फसल पीली हो गई और खरपतवार में बदल गई। खेत मुसम्मात् की कोख की तरह बंजर हो गई थी। कुआं-बउली सब का जल सूखने लगा था। यदुनाथ मिसिर गठरी बन कर रह गए थे। सिवाय कलकत्ता वाली के, उनको लोग छूने से भी डरते। वही उनका गूह-मूत कर रही थी। बनारस वाले डाक्टर ने भी साफ मना कर दिया। बोल भी नहीं पाते थे। शरीर से भारी उनका फोड़ा हो चुका था। लेकिन न फोड़ा फटा न ही कब्बो दर्द की शिकायत किये... खुद ही बोले थे एक बार- यह माहुर-पिण्ड है... सारी जिन्दगी इसी को तो इकट्टा किया है... अब इससे कैसा भय...

सूखे ने अब जानवरों को भी निगलना शुरू कर दिया था। मीडिया चीखने लगा था। इधर सरकार का सूखा क्षेत्र का दौरा शुरू हुआ... राहत की

घोषणाएं की गई... उधर अनुदान राशि का बंदर बांट भी शुरू हो गया। मिश्रौलिया के लोग भी अनुदान की नदी में हाथ धोने में व्यस्त थे। अचानक एक दिन मौसम विभाग को ठेंगा दिखा कर बादलों का समूह नृत्य गान करने लगा। खूब बारिश हुई... खेल-खलिहान... कुआं-बाउली जिधर देखो पानी ही पानी... जब पानी थमा तो यदुनाथ मिसिर की आत्मा शरीर का त्याग कर चुकी थी। उसी पानी में ही उन्हें लोग नारायणी नदी ले गये थे। बीमारी का शरीर गांव-सीवान के पास फूंकना ठीक नहीं था... वैसे भी बाग-बगीचा पानी से भरा पड़ा था।

कर दिया अंतिम संस्कार नारायणी के तट पर। पूरा शरीर दो मिनट में जल गया, लेकिन वह माहुर-पिण्ड जलाने में नाकों चना चबाना पड़ा... लेकिन जलना तो दूर वह पिघला भी नहीं। अंत में थक-हार कर वह हिस्सा नारायणी में प्रवाहित कर दिया गया... शायद उसके गोद में पल रहे जंतु का उदर ही उसकी अंतिम परणित हो... नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः... ◆



एलिजाबेथ

इसके साथ-साथ उसने एलिजाबेथ को मार्क्सवादी साहित्य की पहचान कराना भी सिखाया था। उन दोनों की यह मित्रता दिन पर दिन बढ़ती गई और शीघ्र ही गहरे प्यार में बदल गई।



जन्म : 20 अप्रैल, 1955, फुसावली, जनपद-अलीगढ़ (उ०प्र०)

देश की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

अंग्रेजी, जर्मन, तेलगू, मराठी, गुजराती, पंजाबी एवं उर्दू में रचनाएं अनुदित एवं प्रकाशित।

प्रकाशित कृतियाँ : कहानी-संग्रह “हैरी कब आएगा”, आत्मकथा “तिरस्कृत”।

कविता-संग्रह ‘प्रयास’ और ‘क्यों विश्वास करूं’, बाल कविताएं ‘बच्चे सच्चे किस्से’ और ‘मधुर बालगीत’।

आत्मकथा ‘संतप्त’, कविता-संग्रह ‘कब होगी वह भोर’ जीवनी ‘मातासीन’।

सम्प्रति : भारत सरकार के उपक्रम (एस० टी०सी० ऑफ इण्डिया लि०, नई दिल्ली) में विपणन प्रबन्धक के पद पर कार्यरत।

सम्पर्क : डी-20, एस०टी०सी० कालोनी, महारौली रोड, नई दिल्ली-110017।

आज, मैं दस वर्षों के बाद विनोद वशिष्ठ से मिला था। सरकारी नौकरी और फिर

एक शहर से दूसरे शहर में तबादले पर तबादले के कारण मैं अपने दिल्ली के साहित्यिक मित्रों से कट कर रह गया था।

विनोद वशिष्ठ दिल्ली के समीप गुड़गांव के एक कालिज में प्रोफ़ैसरी करता है। उन दिनों वह रहता भी वहीं था। प्रोफ़ैसरी के साथ-साथ वह देश की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर गंभीर लेख व समीक्षाएं भी लिखता रहता था। उन दिनों आलोचना के क्षेत्र में उसका अच्छा-खासा नाम था।

विनोद के लेखन और उसकी बौद्धिकता से प्रभावित होकर ही एलिजाबेथ उसकी ओर आकर्षित हुई थी। इसके साथ-साथ उसने एलिजाबेथ को मार्क्सवादी साहित्य की पहचान कराना भी सिखाया था। उन दोनों की यह मित्रता दिन पर दिन बढ़ती गई और शीघ्र ही गहरे प्यार में बदल गई। एक दिन सांयकाल इण्डिया-गेट के पार्क में वे दोनों एक-दूसरे के हाथों में हाथ डाले घूम रहे थे। उस दिन मैं भी इण्डिया-गेट पर लगी दूधिया रोशनी का आनन्द उठा रहा था। मैं दो कदम आगे बढ़ा ही था कि विनोद और एलिजाबेथ एकदम सामने आ गए। विनोद ने एलिजाबेथ से परिचय कराते हुए मुझसे कहा-

“अशोक, यह एलिजाबेथ है ..., मेरी मित्र, नई दिल्ली, आर०के० पुरम के

केन्द्रीय विद्यालय में अंग्रेजी की अध्यापिका है।”

एलिजाबेथ सुघड़ रूपसी तो थी ही। उस दिन नीले आसमानी रंग की साड़ी में उसका सांवला-सलौना रूप ..., व्यक्तित्व में ऐसा कुछ था जो एकाएक ध्यान आकृष्ट करता था। मुख से कम आंखों से अधिक बतियाती। लेकिन जब भी बोलती मधुर और खनकदार आवाज में अपनी बात रखती।

विनोद वशिष्ठ और एलिजाबेथ के प्यार का किस्सा दिल्ली के हरेक साहित्यकार की जुबान पर रहने लगा। वे भी दोनों अब बे-झिझक दिल्ली की साहित्यिक गोष्ठियों में उपस्थित रहते और घण्टों-घण्टों बहसों में हिस्सा लेते। विनोद शुरू से ही प्रगतिशील एवं वामपंथी विचारधारा का लेखक रहा है। वह हमेशा मंचों से वर्ण-भेद की बात न कह कर वर्ग-भेद पर ही चर्चा करता। उसका मानना था कि जब गरीब-अमीर का भेद मिट जाएगा तो ऊँच-नीच की भावना देश से अपने आप समाप्त हो जाएगी। उसकी ऐसी ही बातों से एलिजाबेथ पूरी तरह से प्रभावित हो चुकी थी। वह मन ही मन मंद-मंद मुस्कराती और सोचती-

“विनोद के कितने अच्छे विचार हैं, ऊँच-नीच से कोसों दूर।”

कई बार विनोद की बातें सुनकर मैं भी सोचता कि वह लुआलूत व धर्म के ढकोसलों से वाकई बहुत ऊपर है। एक-दो

बार अनुरोध के स्वर से उसने मुझेसे कहा था-

“क्यों दलित साहित्य के लेखन के फेर में पड़े हो, क्या साहित्य भी दलित होता है ?”

लेकिन मैं उसकी कथनी और करनी को देख कर विचलित हो उठता था। उसके घर में जब भी कोई धार्मिक या सामाजिक कार्यक्रम होता तो उसमें वह

अपनी बात प्रस्तुत करते। इस विषय पर जब भी मैं विनोद से चर्चा करता, वह बड़ी चतुराई से हँस कर टाल जाता।

“... अब यार, घर वालों की भी तो माननी पड़ेगी, सैंकड़ों वर्षों के संस्कार एकदम से कैसे छूट जाएंगे ?”

मुझे अच्छी तरह याद है, एक रोज़ उसने मुझे समझाते हुए कहा था-

“अशोक, अपने मित्रों और दुश्मनों

क्यों जमे हुए हैं ? आखिर हम इन पर कैसे विश्वास करें ? पहले ये हमारे दलित समाज के विश्वास-पात्र तो बनें। मैं बहस में पड़ना नहीं चाहता था, इसलिए विनोद से चर्चा करना उचित नहीं समझा।

एलिजाबेथ उसके लेखन की पहले से ही दीवानी थी, अब वह उसका संग व प्यार पाकर बहुत खुश थी। कई बार वह अपने घर वालों की मर्जी के खिलाफ उसके साथ हिल-स्टेशनों पर घूम आई थी। विनोद ने उसे अपने प्यार के रंग में रंगने के साथ-साथ वामपंथी विचारधारा में पूरी तरह से रंग डाला था। जैसा कि अक्सर होता है- प्यार के बंधन में प्रेमी अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं। एलिजाबेथ के साथ ऐसा ही हुआ था। वह देखते ही देखते विनोद के साथ बहुत लम्बी यात्रा तय कर गई। वास्तव में विनोद भी उसे बहुत प्यार करता था। विनोद के परिवार वालों को भी एलिजाबेथ को लेकर कोई परेशानी नहीं थी। मां-बाप का अकेला बेटा था विनोद, फिर देखने-दिखाने में एलिजाबेथ इक्कीस ही बैठती थी विनोद से। हां, कई बार एलिजाबेथ के ही परिवार वालों ने उसे विनोद के साथ मित्रता को लेकर समझाया था। पिता ने अपने अनुभवों के अनुसार सावधान करते हुए एक रोज़ कहा था-

“एलिजा, तुम समझदार हो ..., सोच - समझकर ही निर्णय लेना ..., बेटा, कल को कोई परेशानी न खड़ी हो जाए ?”

पिता की बातें सुनकर एलिजाबेथ परेशान हो उठती थी। उस दिन उसने पिता से साफ-साफ कहा-

“हमारे परिवार को क्रिश्चियन बने हुए बीस वर्षों से अधिक का समय हो गया है, मेरे सभी साथियों और मित्रों में



बढ़-चढ़कर व मन लगाकर भाग लेता। हाथ में लाल रंग का कलावा और माथे पर गज भर लम्बा तिलक लगाए फिरता। यह हाल केवल विनोद का ही नहीं था, अपने आपको घोर कम्युनिस्ट कहे जाने वाले सभी का था। इनके हाथों की कलाइयों पर लाल रंग का कलावा तो बँधा ही रहता, दोनों हाथों की सभी उंगलियों में तरह-तरह के पत्थरों की अंगूठियाँ टुंसी रहती। ये मंच पर बात करते-करते हमेशा अंगूठियों वाले व कलावा बँधे हाथ को हवा में लहराकर

की पहचान करना सीखो..., हम दलित समाज के मित्र हैं, अब समय आ गया है कि हम अपनी इस साँझी लड़ाई को मिलकर लड़ें, दलित लेखकों को अब हमारे ऊपर विश्वास करना होगा।”

मैं उसकी बातें सुनकर उस समय भी मुस्कुरा कर रह गया था। सोच रहा था कि कह दूँ कि आजादी के छप्पन-सत्तावन वर्षों के बाद भी आज तक कम्युनिस्टों ने अपने बीच से दलित नेतृत्व क्यों नहीं उभरने दिया। पार्टी में बड़े-बड़े और ऊँचे पदों पर ब्राह्मण ही

हमारे परिवार की पहचान क्रिश्चियन परिवार की है ...।”

“बेटी फिर भी, तुम एक बार विनोद से साफ-साफ कह दो ..., जब वह तुम्हें सच्चा प्यार करता है तो वह यह सब जानकर भी इन्कार नहीं करेगा।” पिता ने एलिजाबेथ के सिर पर स्नेह का हाथ फेरते हुए कहा था।

पिता की इस बात से वह झुंझला कर रह गई और बोली-

बच्ची खेल रही थी। मैंने उसकी ओर एक बार फिर गौर से देखा कि वह विनोद वशिष्ठ ही है। वह भी मुझे मुड़-मुड़ कर देख रहा था। आखिरकार, पहल मैंने ही की और उससे पूछा-

“विनोद वशिष्ठ ही हो न!”

उसने भी मेरी ओर देखते हुए कहा-
“अरे, अशोक परमार!” उसने बच्ची को बगल में खड़ी महिला के हाथों में सौंप, फिर कस कर वह मुझसे गले लग कर

कहाँ है ?”

विनोद ने मेरी बात पूरी भी न होने दी कि तभी उसने मेरा हाथ दबाते हुए चुप रहने को कहा। एलिजाबेथ का नाम सुनते ही उसने मुँह बिचका लिया था। वह अब मेरे कान के पास मुँह लाकर फुसफुसाया-

“उस बिच के बारे में फिर कभी फुर्सत से बताऊँगा, धोखा देती रही वह मुझे लगातार... वह तो यार...।”

विनोद बात करते-करते अचानक रुका था। जैसे उसे कुछ याद आ गया हो। मैंने भी उस समय इस विषय पर उससे चर्चा करना उचित न समझा। कुछ देर बाद मैं उसके पास से उठकर चला आया था। लेकिन एलिजाबेथ को लेकर मेरे मन में उथल-पुथल मचती रही।

दस वर्ष पहले विनोद और एलिजाबेथ की शादी तक का दिन तय हो गया था। विनोद के परिवार वालों की ज़िद के सामने एलिजाबेथ के परिवार के लोग बेटी की खुशी के लिए हिन्दू-धर्म के रीति-रिवाज़ से विवाह करने को तैयार हो गए थे। लेकिन ऐन वक्त पर उन दिनों का विवाह न हो सकने का क्या कारण रहा ? इस बात को लेकर कई दिनों तक मेरे मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। कई बार सोचा कि विनोद से मिलकर पूरी जानकारी प्राप्त करूँ। लेकिन यही सोचकर चुप्पी साधकर रह गया कि मुझे किसी के व्यक्तिगत मामले में टांग अड़ाने की क्या पड़ी ?

कई महीनों बाद ‘साहित्य अकादमी’ के एक कार्यक्रम में कहानीकार रवीन्द्र से मेरी भेंट हुई थी। कार्यक्रम के बाद चाय के दौरान विनोद वशिष्ठ को लेकर यँ ही सहज रूप से चर्चा चल पड़ी। रवीन्द्र शुरू से ही विनोद के काफी नजदीक रहा है। विनोद और एलिजाबेथ के साथ मैंने

विनोद के परिवार वालों की ज़िद के सामने एलिजाबेथ के परिवार के लोग बेटी की खुशी के लिए हिन्दू-धर्म के रीति-रिवाज़ से विवाह करने को तैयार हो गए थे।

“डैडी, विनोद प्रगतिशील विचार-धारा का व्यक्ति है। साथ ही साथ वह वामपंथ में भी पूरा विश्वास रखता है ..., हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान व इसाईयों में तनिक भी भेद नहीं रखता।”

आखिरकार, एलिजाबेथ ने अपने ही मन की बात पूरी की। दस वर्षों के लम्बे प्यार के बाद और एक-दूसरे को खूब अच्छी तरह से समझने के बाद विनोद के साथ रिश्ता तय हुआ। इसी दौरान मेरा तबादला एक शहर से दूसरे शहर होता रहा। हाँ, उस वक्त दिल्ली छोड़ते समय दूसरे मित्रों से मुझे पता चला था कि अगले महीने की पच्चीस तारीख को विनोद और एलिजा विवाह बंधन में बँधने जा रहे हैं। मैं उस समय उन दोनों को शुभकामना संदेश भी न भेज सका था।

और आज, जब विनोद दस वर्षों के बाद जनपथ चौराहे पर लाल-बत्ती के पास मुझे मिला तो देखकर दंग रह गया। एलिजाबेथ की जगह उसके बगल में एक थुल-थुल शरीर की महिला खड़ी थी। विनोद की गोद में डेढ़-दो वर्ष की एक

मिला था।

“यह मेरी पत्नी कमला।” बगल में खड़ी उस महिला की ओर संकेत करते हुए उसने कहा था।

मैं बहुत देर तक कमला में एलिजाबेथ को खोजता रहा, लेकिन असफल रहा। विनोद मेरे मनोभावों को भाँपते हुए बोला-

“अशोक, यह मेरी बेटी टुकटुक ..., प्यार से हम इसे टुकटुक कहते हैं, वैसे इसका असली नाम लक्ष्मी वशिष्ठ है।”

इस दौरान हम बातें करते-करते जंतर-मंतर के पार्क में आ बैठे थे। बस, वह मुझसे मेरी नौकरी और तबादले के बारे में ही चर्चा करता रहा। मैंने उसे बताया कि अभी अहमदाबाद से दिल्ली आए मुझे छः महीने ही हुए हैं। दूसरे साहित्यिक मित्रों को तो अभी तक मेरे बारे में कोई जानकारी नहीं है। मैं उससे एलिजाबेथ के बारे में बातें करना चाह रहा था। लेकिन उसकी पत्नी उसके साथ थी। फिर भी मैंने दबे शब्दों में उससे पूछ ही लिया-

“यह सब कैसे हुआ, एलिजाबेथ

उसे न जाने कितनी बार साहित्यक गोष्ठियों व दिल्ली के कई रेस्टोरेंटों में एक ही टेबल पर साथ-साथ देखा था। मण्डी-हाउस के 'बुक कार्नर' पर ये तीनों रोज शाम को विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के पन्ने उलटते-पलटते नजर आ ही जाते थे। मैंने अब विनोद और उसकी पत्नी के साथ अपनी मुलाकात होने की बात उसे बताया। वार्ता के दौरान मैंने उस से एलिजाबेथ के साथ विनोद का विवाह न होने का कारण जानना चाहा। मेरे मुँह से एलिजा का नाम सुनकर रवीन्द्र ने माथे पर सलवटें डालते और नथुने फुलाते हुए कहा-

“परमार साहब, उसकी बात मत करो, वह तो बड़ी चार सौ बीस औरत निकली।”

अपनी बात कहते-कहते वह झटके के साथ रुका था। कुछ पल ठहर कर वह फिर बोला-

“... यार क्या जमाना आ गया, अब तो किसी का कुछ पता ही नहीं चलता!”

“क्या वह किसी और के साथ ...।” मैंने उससे पूछा था।

“नहीं यार,.... वह ...।” बात करते-करते रवीन्द्र फिर अटका था।

मैंने रवीन्द्र के कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा-

“ऐसा आखिर क्या हुआ था कि उन दोनों का विवाह....।”

“.... कहा न परमार कि वह औरत धोखेबाज निकली, विनोद को मूर्ख बनाती रही, बूढ़ा कर गयी वह उसको..., उस बेचारे ने अब बुढ़ापे में शादी की है,” तूने तो देखा ही है- दो वर्ष से भी कम उम्र की बच्ची है उसकी।” वह एक रौं मे अपनी बात कह गया था।

“कैसा धोखा दिया था एलिजाबेथ ने ?” मैंने सहजता से पूछा था। अब रवीन्द्र मेरे निकट आकर दबे शब्दों में बोला-

“एलिजाबेथ और उसके परिवार के लोग इसाई बनने से पहले चूहड़ा जाति से संबंध रखते थे, यार अशोक, क्या धर्म बदलने से जाति बदल जाती है...., यह

तो अच्छा हुआ कि समय रहते सच्ची बात पता चल गयी, वरना विनोद के साथ बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता।”

“लेकिन रवीन्द्र तुम और विनोद तो धर्म-जाति व ऊँच-नीच की बातों को मानते ही नहीं..., तुम तो प्रगतिशील व वामपंथी....।” मेरे स्वर में भी अब तेजी थी।

“प्रगतिशील या वामपंथी होने का यह मतलब नहीं है कि किसी भी चूहड़ी-चमारी से विवाह रचाते फिरे।” भारतीय वामपंथी एक साँस में अपनी बात कह गया था। उसके हाथ की कलाई पर लाल रंग के कलावे पर नजर डालते हुए मैंने उससे पूछा-

“आज-कल एलिजाबेथ है कहाँ ?”

“भाग गयी भंगिन शर्म के मारे शहर छोड़कर, अब न जाने कहाँ रह रही है अपने परिवार के साथ।”

मैं रवीन्द्र के चेहरे पर एलिजाबेथ का पता तलाश रहा था। ◆



कन्या

अपने गर्भ में अजन्मी नन्ही कन्या के प्रति उपजे मातृत्व स्नेह से मैं फूट-फूट कर रो पड़ी.... सौम्या ने स्कूल से आते मुझे रोता देख पूछा, “मम्मी, पापा ने मारा.... मैं दादी से पापा की शिकायत करूँगी।”



परिचय : वसंत पंचमी 1966 को महोबा, उत्तर प्रदेश में जन्म।

राजनीति शास्त्र में परास्नातक।

विधि स्नातक की शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से।

‘तेरह करवटें’, ‘एक अप्रेषित पत्र’, ‘क्या कहें ?’ कहानी संग्रह प्रकाशित। कई सम्मान।

संप्रति : उच्च न्यायालय इलाहाबाद की लखनऊ खण्डपीठ में प्रथम श्रेणी अधिकारी।

संपर्क : डी-4, बटलर पैलेस ऑफिसर्स कालोनी लखनऊ-01

दिवाकर के हाव भाव से मैं समझ गयी कि मेरे गर्भ में पल रहा भ्रूण कन्या का है। सौम्या के चौथे जन्मदिन के बाद हम दोनों ने एक पुत्र की कामना की थी इसके बाद परिवार नियोजन अपनाया तय किया था। पर हर तय की हुई बात कब कहाँ पूरी हो पाती है ? ऐसा ही इस मामले में हुआ। न चाहते हुए भी मैंने दिवाकर की बात मान ली और माँ जी की अनुमति के साथ अल्ट्रासाउण्ड के द्वारा भ्रूण लिंग परीक्षण करवा लिया पर यह दृढ़ निश्चय सुनाते हुए कि बच्चा चाहे जो हो लड़का या लड़की मैं गर्भपात नहीं कराऊँगी। और हुआ भी यही मेरे गर्भ में पुनः कन्या है और अब मुझे और अधिक माँ जी का कोसना सुनना होगा। पति महोदय के अनुचित आग्रह आदेश दबाव के आगे न झुकूँ इसके लिए स्वयं को तैयार करना होगा। माँ जी से कुछ कहना सुनना बेकार था वह स्वयं स्त्री होते हुए भी पोते का मुँह देखना ज्यादा अच्छा समझ रही थीं। उनकी मनोःस्थिति का आकलन करना दूभर था।

पोते की कामना के लिए उन्होंने जितने व्रत-उपवास रखे शायद ही कोई रखता हो।

ऑफिस जाते-जाते दिवाकर किचन में आकर अपना अन्तिम फैसला हथौड़े की चोट की तरह सुना गए, “शाम को तैयार मिलना.... नहीं चाहिए हमें एक और लड़की।”

दिवाकर का स्पष्ट आशय मेरे गर्भ में पल रही कन्या की भ्रूण हत्या अर्थात् गर्भपात कराने से था। कन्या भ्रूण समाप्ति की रोकथाम से संबंधित कानून पी.पी.एन.डी.टी. बन चुका है इसके तहत प्रसव पूर्व लिंग निर्धारण की जाँच करना व कराना अवैधानिक है। एक्ट के अन्तर्गत तीन साल तक की कैद और दस से पचास हजार तक का जुर्माना निर्धारित है। इसकी परवाह किए बिना कितने डॉक्टर मनचाही फीस वसूल कर भ्रूण-लिंग परीक्षण चोरी छुपे कर रहे हैं और दिवाकर जैसी मानसिकता वाले मोटी रकम देकर यह घृणित-अमानवीय परीक्षण करवा रहे हैं।

पूरी दोपहर मैं अनिर्णय की स्थिति में रही। माँ जी दो-तीन बार कह चुकी थीं, “बहू तैयार हो जाना, दिवाकर के साथ क्लीनिक चली जाना।”

अपने गर्भ में अजन्मी नन्ही कन्या के प्रति उपजे मातृत्व स्नेह से मैं फूट-फूट कर रो पड़ी.... सौम्या ने स्कूल से आते मुझे रोता देख पूछा, “मम्मी पापा ने मारा.... मैं दादी से पापा की शिकायत करूँगी।” मैंने उसे गोद में लेकर दुलारा और कहा, “नहीं पगली! तेरी याद आ गई थी। तुझे स्कूल से आने में देर हुई थी न इसलिए... आँसू आ गए।”

“मम्मी आप कितनी अच्छी हो, मुझे कितना चाहती हो.... आई लव यू मम्मा।” सौम्या लाड़ियाते बोली।



“आई लव यू टू बेटा।” मैंने सौम्या के गालों को चूमते कहा। नन्ही सौम्या खुश हो गई और ड्रेस के कपड़े बदल दादी के पास चली गई। मैं किचन में सौम्या के लिए भोजन गरम करने लगी तभी दिवाकर का फोन आया, “नंदिता डॉक्टर रश्मि से बात हो गई है उन्होंने शाम सात बजे अपने क्लीनिक में बुलाया है.... आधे घण्टे में सब निपट जाएगा.... तुम तैयार मिलना मैं साढ़े छः तक आता हूँ.....” आप ही आप बोलते रहे दिवाकर, मुझे कुछ कहने-बोलने का मौका दिए बगैर और फोन काट दिया।

अनुनय-विनय, मान-मनौव्वल सब व्यर्थ रहा। मन मारकर मुझे दिवाकर के साथ डॉक्टर रश्मि के क्लीनिक जाना पड़ा। दिवाकर के साथ कार में बैठते-जाते देख माँ जी का परम संतोषी चेहरा मेरी आँखों से होता मस्तिष्क में चित्र सा जड़ गया। एक स्त्री दूसरी स्त्री के ऊपर

तीसरी स्त्री को वजूद में न आने देने के लिए इतना दबाव डाल सकती है, अपने कृत्य पर हर्षित हो सकती है ? कोई भी मेरी सास को देखकर आश्चर्य कर सकता है।

ईश्वरीय विधान डॉक्टर रश्मि के पति को हार्ट अटैक आया था.... उन्होंने कार में बैठे-बैठे एक चिट दिवाकर को पकड़ा दी और कहा, “अभी समय नहीं हुआ है, एबॉर्सन कराने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी यह दवाएँ खिला देना एबॉर्सन खुद-ब-खुद हो जाएगा।”

दिवाकर प्रसन्न थे चलो एबॉर्सन का खर्चा बचा। कैमिस्ट की दुकान से डॉक्टर रश्मि द्वारा लिखी दवाएँ खरीद कर हम दोनों घर वापस आ गए। माँ जी ने रात्रि भोजन बनाने की तैयारी शुरू कर दी.... सौम्या टी.वी. में अपना मन पसन्द कार्टून देखने में व्यस्त थी। मैं थकी-हारी-सी निढाल पलंग पर कुछ देर सुस्ताने की

गरज से लेट गई। दिवाकर बाथरूम चले गए।

किचन से माँ जी तत्काल मेरे कमरे में आ गयीं। मैं उठने को हुई पर वह मुझे रोकते माथा छूते.... खुशी से बोलीं, “निपट गया नंदिता....” “नहीं डॉक्टर ने ये दवाएँ खाने को दी हैं।” मैंने पर्स में रखी दवाइयाँ निकालकर उन्हें दिखाई और उठकर खड़ी हो गई।

माँ जी की आँखों की खुशी पलभर में तिरोहित हो गई, “दवा खाने से अच्छा एबॉर्सन करा लेती.... कौन समझाए तुम पढ़े-लिखों को।” और बड़बड़ाती, पैर पटकती वापस किचन की ओर चली गई।

रात सोने से पहले मैंने दिवाकर से झूठ बोल दिया कि दवाएँ ले ली हैं। दिवाकर निश्चिंत हो दो पैग लेने के बाद अपने हिस्से का सुख पा जल्दी ही खरटि भरने लगे और मैं निश्चय-अनिश्चय के भँवर में डूबती-उतरती, सोई-अधसोई-सी रात भर बेचैन रही।

भोर दो पल के लिए आँख लग गई। स्वप्न में सौम्या की प्रतिमूर्ति नहीं बालिका ने मेरी गोद में किलकारी मारी.... मैं प्रसन्न चरम वात्सल्य में डूबी अपनी दूसरी पुत्री को गोद में पा हर्ष के अतिरेक में पहुँच झर-झर आँसू बहा उस नहीं परी को प्यार दुलार कर रही हूँ। मुस्कराती बच्ची एकाएक चीख मार कर रो पड़ी.... स्वप्न टूटा सौम्या रो रही थी। उसने भी कोई स्वप्न देखा था, शायद डरावना। तभी वह रोई थी।

मैंने सौम्या को अपने आँचल में समेट लिया। पल भर में वह पुनः सो गई। भोर में देखे स्वप्न ने मुझे बल दिया। स्त्रीत्व का तेज मेरी आत्मा में उदित हुआ। गर्व और दृढ़-निश्चय के चिन्ह मेरी आँखों में छा से गए। दृढ़ संकल्पित हो मैंने सूर्य की पहली किरण को

बालकनी में आकर निहारा और पति दिवाकर के नामाराशि सूर्य भगवान को साक्षी मान प्रण किया कि मैं अपने गर्भ में पल रही कन्या को जन्म दूँगी.... उसे मरने नहीं दूँगी।

दृष्टि पड़ी पौधा कुछ-कुछ मुरझाया-सा दिखा। हाँ.... वाकई तुलसी की पत्तियाँ सूखी-मुझाई दिखीं। मैंने तत्काल खुर्पी से मिट्टी के नीचे दबी सारी दवाएं निकालीं। मुझे अपने कृत्य पर क्षोभ

शताब्दी में स्त्री, स्त्री के विरुद्ध है। क्या कन्या भ्रूण हत्या सम्पूर्ण मानव जाति और मानवता का घोर अपमान नहीं है ? अभिशाप नहीं है ?

परमात्मा का अंश जीवात्मा हमारे भीतर साक्षी भाव से विद्यमान रहता है। हमारे छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य में कभी उसकी सहमति होती है तो कभी असहमति। जिन कार्यों में हमें आत्मा की सहमति प्राप्त होती है उनमें से प्रायः प्रत्येक कार्य का परिणाम सुखद होता है।

मेरी अन्तरात्मा की आवाज मुझे मेरे गर्भ में पल रही बच्ची को बचाने के लिए प्रेरित कर रही है और मैं अपनी आत्मा की आवाज मानने के लिए दृढ़ हूँ फिर भले ही मुझे अपने निर्णय के लिए अपने पति, अपनी सास की इच्छा-आज्ञा के विरुद्ध ही क्यों न जाना पड़े। क्योंकि मुझे मालूम है कि मैं सही हूँ.... मेरा निर्णय सही है।

मुझे अपने कृत्य पर क्षोभ हुआ.... जो दवाएं प्राण ले सकती हैं एक अजन्में को संसार में आने से रोक सकती हैं, वह भला किसी पौधे के लिए उर्वरा कैसे बन सकती हैं ?

डॉक्टर रश्मि की दी दवाएँ मैंने खुर्पी से गमले में लगी तुलसी के नीचे मिट्टी हटाकर दबा दीं। मैंने बचपन में किसी से सुना था कि दवाएँ मिट्टी में मिलकर खाद का काम करती हैं।

दिवाकर निश्चिंत थे... पूछते रहे, “दवा ले ली.... सब ठीक रहा.... कोई परेशानी हो तो डॉक्टर के यहाँ चलें।”

मैं झूठ पर झूठ बोलती रही इस भय से संतप्त हुए कि आखिर वह क्या कर रही है ? जब सच सामने आएगा तब वह दिवाकर और माँ जी दोनों का सामना कैसे कर पाएगी ?

एक सप्ताह बीत गया। एक सुबह बालकनी में रखे तुलसी के पौधे पर मेरी

हुआ.... जो दवाएं प्राण ले सकती हैं एक अजन्में को संसार में आने से रोक सकती हैं, वह भला किसी पौधे के लिए उर्वरा कैसे बन सकती हैं ? मैंने दवाएं कागज की पुड़िया में लपेट डस्टबिन में फेंक दीं।

पुरुष जिसे एक स्त्री अपने शरीर में नौ माह धारण करने के बाद जन्म देती है, पुरुष जो स्त्री से पोषित हुए स्त्री से ही संसार का अवर्णनीय चरम सुख प्राप्त करता है, वही पुरुष एक स्त्री जाति से इतनी घृणा करता है ? उससे बढ़ कर विडम्बना यह है कि दिवाकर की माँ जो स्वयं स्त्री जाति से है वह भी इस मामले में दिवाकर के साथ है। इक्कीसवीं



गिरगिट

मैं अपने किसी दोस्त को भी अपने विवाह पर बुला नहीं पायी थी। शशांक के और मेरे आठ दस घर वालों की मौजूदगी में ही बड़े संक्षिप्त और सादे रूप में विवाह की सारी रस्में सम्पन्न हो गयीं थी।



जन्म : सन् 1983 में लखनऊ में।
काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से अर्थ शास्त्र से बी० ए० आनर्स
किसी भी साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित यह पहली कहानी 'गिरगिट'।
छात्र जीवन से ही लिखने में रुचि।
अच्छा पढ़ना और अच्छा लिखने की कोशिश।
संपर्क : 'निकट' कार्यालय
P.O. Box - 52088
Abudhabi, UAE

गुस्से से फोन का रिसीवर क्रेडिल पर पटक दिया मैंने- 'एक और गिरगिट' स्मृति पंजिका के वर्क फड़फड़ा उठे ... कॉलेज के दिनों में मैं और मेरी सखी संजना कॉलेज के हीरोकट लड़कों को गिरगिट की संज्ञा देते थे। वह कॉलेज के बिन्दास दिन थे, इसलिए इसके लिए हमें किसी ने टोका नहीं था। ऐसा नहीं था कि मैं और संजना पुरुष मैत्री से डरती थी बल्कि मेरे मित्रों में पुरुषों की संख्या अधिक थी। लोग विस्मय और शंका से मेरी ओर देखते ... उन दिनों आज की तरह पुरुष मित्र को समाज ने मान्यता नहीं दी थी और शायद इसी वर्जना के कारण महिलाओं से अधिक मेरे पुरुष मित्र थे। शुरू से ही मुझे लीक से हट कर चलना और जीना पसंद था। इसी वजह से कई दकियानूस हण्टियां मुझे अति आधुनिक समझती थीं। लेकिन मेरे बारे में कोई क्या कहता है। इसकी मुझे रती भर परवाह न थी।

मैं हूँ भी तो अति सुन्दर। कॉलेज के दिनों में तो मेरी कमसिन सुन्दरता कहर बरपाती थी। मेरे चाहने वालों की कतार बहुत लम्बी थी। हालांकि संजना भी बला की खूबसूरत थी। हम दोनों खेल-खेल में अपने चाहने वालों की लिस्ट बनाने बैठ जाती। जिसके चाहने वालों की लिस्ट लम्बी होती उसे कॉलेज कैण्टीन में ट्रीट देनी पड़ती। हर बार ट्रीट मुझे ही देनी

पड़ती क्योंकि मुझे चाहने वालों में कॉलेज के विद्यार्थी और प्रोफेसर तो होते ही थे कमबख्त चपरासी भी पीछे नहीं रहते थे।

खैर वह तो कॉलेज के इन्द्रधनुषी दिन थे ... फूलों से महकते, तितलियों से उड़ते, चिड़ियों से चहचहाते। कॉलेज की पढ़ाई समाप्त होते ही मेरी शादी शशांक से तय हो गई। शशांक स्मार्ट था, सुन्दर था, अच्छा वेतन, दुबई में अच्छी नौकरी थी। प्रथम साक्षात्कार में ही उसने मुझे प्रभावित कर लिया था। मैं सहमत हो गई थी।

चट मंगनी पट शादी। मुझे कुछ भी सोचने समझने की मोहलत ही नहीं मिली थी। मैं एक नये परिवार, नये परिवेश में आ गई थी। शशांक के घर में केवल उसकी मां थी, जो काफ़ी अर्से से बीमार चल रही थी। उन्हीं के कारण व्वरित तौर पर शशांक ने बड़ी सादगी से मुझसे विवाह किया था। मुझे अच्छा तो नहीं लगा था लेकिन मैं अपने घर वालों के कारण चुप रही थी। अफसोस तो इस बात का था कि मैं अपने किसी दोस्त को भी अपने विवाह पर बुला नहीं पायी थी। शशांक के और मेरे घर वालों की मौजूदगी में ही बड़े संक्षिप्त और सादे रूप में विवाह की सारी रस्में सम्पन्न हो गयीं थी।

बिदाई की रस्म पूरी होने पर मैंने तीन बारातियों वाली इस बारात के साथ एयरपोर्ट के लिए प्रस्थान किया था। मुझे यह सब बड़ा अजीब लग रहा था। पर

शशांक की मां, जो अब मेरी भी मां थी, बीमार थी। रेलगाड़ी के लम्बे सफ़र की बजाए प्लेन का सफ़र ही शशांक को उपयुक्त लगा था।

लगभग डेढ़ दो घण्टों के बाद ही मैं बाबुल के घर से पिया के घर जा पहुँची थी। पास पड़ोस की कुछ स्त्रियों ने हमारी अगवानी की थी। शादी के बाद की शेष रस्मों की औपचारिकता पूरी की थी। मैं



शशांक की बीमार मां से मिली थी। उनकी झुर्रियों से भरी क्षीण काया मेरी संवेदना को हिलकोर गयी थी। उनकी डबडबायी हुई धूमिल आँखों में मेरे लिए प्यार और खुद के लिए ग्लानि थी। अपनी इस असमर्थता पर कि बीमार होने के कारण व नई बहू का स्वागत नहीं कर पायी।

नई होने के कारण मैं उनसे कुछ बात नहीं कर पायी। बस चुपचाप जाकर उनके पांव छू लिए। उनकी आँखों में बुझती हुई ज़िन्दगी की लौ प्रखर हो उठी। उन्होंने मुझे अपने अंकवार में लेने की कोशिश की थी।

रात को महाराजिन ने मुझे खाना खाने के लिए बुलाया था। मेरा आग्रह था

कि मैं सबके साथ खाऊंगी। महाराजिन ने बताया कि मां जी तो खाना खाती नहीं। दिन में फलों का जूस व सूप और रात को केवल दूध लेती है। ... और शशांक को खाना खाए एक घण्टे के करीब हो गया है। मैं सन्न रह गई थी। बहुत बुरा लगा था ... यह कैसा परिवार है ? कैसे हैं इस परिवार के लोग ? शादी के चाव मल्हार की कहीं कोई महक ही नहीं है।

मैंने पेट दर्द का बहाना बना कर खाना खाने से इन्कार कर दिया था। महाराजिन ने बहुत मनुहार की यह मां जी और शशांक की ओर से भी आग्रह करती रही, पर मैं अपनी ज़िद पर अडिग बनी रही।

ज़िद और आक्रोश से भरी मैं पलंग पर पड़ी रही। चाहती थी कि शशांक आए और पूछे कि क्या हुआ निशि ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ? फोन कर डॉक्टर बुला दू ? ... शायद खाने की थाली खुद लेकर आ जाए और मुझे अपने हाथ से खाना खिलाए। ... नहीं, मैं उसे क्षमा नहीं मांगने दूंगी। कुछ भी हो वह मेरा पति है, मेरा देवता है और मेरा देवता मेरे आगे मुझे, मुझसे क्षमा मांगे ...

नहीं, मैं ऐसा कत्तई नहीं चाहूँगी।

पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं अदहन की तरह खौलती बिस्तर पर पड़ी छटपटाती रही और रात के ग्यारह बज गए। नौद ने मेरी पीड़ा पहचान ली और मुझे अपने आगोश में ले लिया और मेरे लिए अपने सपनों के द्वार खोल दिए। मैंने देखा ... हल्के से मेकअप के साथ सुर्ख सुहाग साड़ी पहने मैं बिस्तर पर बैठी हूँ। शशांक ने मेरा घूँघट उठा कर मेरी गोद में अपना पैक किया हुआ गिफ्ट रख दिया। वे मुझसे गिफ्ट खोल कर देखने का आग्रह कर रहे हैं लेकिन मैं अपनी सुधबुध खोती जा रही हूँ। उनका सामीप्य एक नशे की तरह मुझ पर तारी होता जा रहा है।

अचानक किसी ने झिझोड़ कर मुझे जगाया। शशांक थे। बदहवास-‘निशी, उठो ... जल्दी चलो। मां की तबीयत ज्यादा बिगड़ गई है, उन्हें हास्पिटल लेकर चलना है।’

पूरा एक सप्ताह लगा मां की तबीयत संभलने में। शशांक और मैंने दिन-रात एक कर दिया मां के लिए। शशांक तो फिर भी डाक्टरों, दवाइयों और अन्य ज़रूरी सामान के लिए बाहर चले जाते थे पर चौबीसों घण्टे मां के पास बनी रहती। उनकी एक कराह पर सजग होकर उनकी देख भाल में लग जाती। मां के साथ रहते-रहते मेरे अन्दर की स्त्रीपन की सारी इच्छाएं मर सी गई थी। बस बची थी तो केवल एक ममता की भावना। अथक निष्काम सेवा भाव।

पूरे एक माह मैंने मां जी की अथक सेवा की। उनका गूँ-मूत धोया, वक्त पर दवा दारू और पथ्य दिया। डॉक्टर और मां जी ने मेरी सेवा और लगन की भरपूर तारीफ़ की। शशांक की नज़रों में कृतज्ञता का भाव देख कर मैं भीग गयी।

घर लौटने के बाद एक दिन मां जी ने कहा-‘निशि बेटा, अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। तुम्हें अब मेरे कमरे में सोने की ज़रूरत नहीं है। पहले की तरह महाराजिन सो जाया करेंगी मेरे कमरे में। आज से तुम शशांक के बेडरूम में सोया करो। ... मुझे दुःख है कि मेरी वजह से शादी की रात से ही तुम्हें शशांक से अलग सोना पड़ा।’

ममता की ओस से भीग कर मेरे मुरझाये मन की पंखुड़ियां फिर खिल गयीं।

इससे पहले कि मैं शशांक से कुछ कहती मेरी नज़र शशांक के हाथ में पकड़े गिलास पर पड़ी। गिलास में शराब थी। एक हाथ में शराब दूसरे में सिगरेट।

रात्रि भोज से निवृत्त हो जल्दी ही मैं अपने कमरे में आ गई। नई साड़ी पहनी। हल्का-फुल्का मेकअप किया। सेफ से शादी से पूर्व ही शशांक के लिए खरीदा गिफ्ट निकाला और डबलबेड़ की साइडटेबल पर रख दिया। सोचने लगी ... कैसे बताऊंगी सहेलियों को कि एक ही छत के नीचे सवा महीना गुज़ार देने के बाद मैं शशांक की देह से अपरचित रही। उसकी चुहुल-चिकोटी से अनजान रही। मुझे आश्चर्य भी हो रहा था कि मेरे जैसी खूबसूरत बीवी को पाकर शशांक निस्पृह कैसे बना हुआ है ?

रात ग्यारह बज गए और प्रतीक्षा जब थकने लगी तो शशांक प्रकट हुए। मुझे देखते ही प्रश्न कर बैठे ‘कहीं जाने की तैयारी है क्या ?’

तन बदन में आग सी लग गई ... ये आदमी है या शिखण्डी ? पूछ रहा है कि कहीं जाने की तैयारी है क्या ? इतना भी नहीं समझता कि सेज पर सज धज कर बैठी स्त्री कहां जाने की तैयारी में होती है?

मुझे गुमसुम देख कर शशांक पलंग के पास रखी कुर्सी पर बैठ गया और शून्य में नज़रे गड़ाये हुए बोला ‘मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं कैसे तुम्हारा शुक्रिया अदा करूं। मां जी की जिस तरह तुमने सेवा की है शायद वैसी सेवा मैं भी नहीं कर सकता था।’

प्रशंसा, वह भी पति की प्रशंसा। मुझ पर नशा सा तारी होने लगा। लेकिन जब तक मैं इस नशे बाहर आती तब तक शशांक बेडरूम से बाहर जा चुका था।

मेरे मस्तिष्क की शिराएं फिर तन गईं लेकिन अगले ही पल विचार आया, शायद मां जी को कोई दवाई देना भूल गए होंगे। मैं धैर्य से फिर प्रतीक्षा करने लगी।

अचानक शशांक की तेज़ चीख मुझे सुनाई दी। मैं दौड़ कर बाहर आयी। शशांक मां को गोद में लिए बिलख रहे थे।

मैंने तत्काल डॉक्टर को फोन किया। थोड़ी ही देर में डॉक्टर साहब आ गए। उन्होंने अपने सारे हर्बे-हथियारों से मां जी का मुआयना किया और गंभीरता से मां जी की मृत्यु की घोषणा कर दी ‘यह तीसरा हार्ट अटैक था, जो अक्सर जानलेवा साबित होता है।’

शशांक सुन नहीं सके। अचेत हो कर फ़र्श पर ढह गए। पन्द्रह दिन और गुज़र गए। मां की अन्त्येष्टि से लेकर तेरहवीं तक मृत्यु की उदासी पूरे घर में डोलती रही थी। पन्द्रह दिन बाद एक बार फिर मैं और शशांक एक ही छत के नीचे अकेले थे। मैंने शशांक की उदासी को

बाँटने की कोशिश की लेकिन शशांक बिना कुछ बोले रात भर सोफे पर पड़ा रहा।

फिर यह सिलसिला ही चल पड़ा ... शशांक रात भर सोफे पर पड़ा रहता और सुबह होते ही दिन भर के लिए कहीं बाहर चला जाता। मैं सोचती, शायद मां जी के सदमे के कारण शशांक ऐसा हो गया है। हफ़ते भर की कशमकश के बाद मैंने निर्णय लिया ... अब और नहीं। मैं शशांक को समझाऊंगी ... मां जी बीमार थी, बूढ़ी थीं। सूखा पत्ता टहनी से कब तक जुड़ा रह सकता है। मैं जानती हूँ मां मां होती है, घनेरी छांव होती है लेकिन ... मैंने यह भी तय किया कि मैं शशांक को इतना प्यार दूंगी, अपना आप उस पर उड़ेल दूंगी कि वह आप्लावित हो उठेगा।

बड़ी हिम्मत कर रात को मैं शशांक के पास गई। वह ड्राईग्रूम में था। इससे पहले कि मैं शशांक से कुछ कहती मेरी नज़र शशांक के हाथ में पकड़े गिलास पर पड़ी। गिलास में शराब थी। एक हाथ में शराब दूसरे में सिगरेट। मेरा माथा भन्ना गया ... यह क्या हो गया है शशांक को ? दुख क्या आदमी को दीवाना बना देता है ? ... पर शशांक से मैंने कुछ कहा नहीं। शायद इसलिए कि मैं अपने आपे में नहीं थी। बचपन से ही पास में किसी को सिगरेट पीता देख कर मेरी सांस घुटने लगती थी।

अगले दिन की नई सुबह वाकई अद्भूत थी। शशांक ने मुझे हौले से जगाया और जल्दी से तैयार हो कर चाय पर आने को कहा। मैं हैरानी से हतवाक ... आज तक तो कभी ऐसा नहीं हुआ। लगा कि शशांक मेरे प्यार, मेरे समर्पण, मेरी सेवा और प्रतिबद्धता को समझ गया है। जीवनसाथी का अर्थ समझने लगा है।

शीघ्रता से खुद को संवार कर मैं

चाय की टेबुल पर जा पहुँची। चाय की चुस्कियों के बीच शशांक ने बाहर घूमने का कार्यक्रम बना डाला। मैं रोमांचित हो उठी। सोचने लगी, पहली बार शशांक के साथ बांहों में बांहें डाले कहां-कहां घूमूंगी मैं।

मैं और शशांक दिन भर घूमते रहे। शशांक ने मुझसे मेरी हर ज़रूरत और पसंद की चीज़ याद से खरीद लेने की हिदायत दी। अपनी ओर से कुछ मंहगे साड़ियाँ और सूट भी दिलवाये। मैं विभोर हो उठी। आकण्ठ भर गई।

दिन भर हम न जाने कहां-कहां घूमते रहे। रात को बाहर से ही डिनर लेकर लौटे। बिस्तर में जाने से पहले आज फिर मैंने स्नान किया। शशांक की दिलवायी नई साड़ी पहनी। हल्का सा मेकअप किया। आज फिर मैंने शशांक के लिए खरीदा गिफ्ट पैक अल्मारी से निकाला। जिसे देने का अवसर बार-बार निरस्त होता रहा था।

सजधज कर कुछ देर पलंग बैठी प्रतीक्षा करती रहीं। फिर सोचा, बाहर ही जा कर देखूं। मुझे शशांक से अभी बहुत सी बातें करनी थीं। आज उसने मेरे बारे में बहुत कुछ जान लिया था दिन में घूमते वक्त, पर अपने बारे में कुछ नहीं बताया था। बाहर ड्राईगरूम में जाकर देखा तो शशांक को सोफे पर बेसुध सोता हुआ पाया। पहले बहुत कोफ्त हुई, गुस्सा भी आया पर फिर उसके भोलेपन पर प्यार उमड़ आया। थक गया होगा बेचारा। एक बार सोचा कि जगा कर बेडरूम में चलने को कहूँ लेकिन उसे गहरी नींद में बेसुध देख कर भीतर ममता सी उमड़ आयी। उसे सोफे पर चादर उढ़ा कर मैं अकेले ही बेडरूम में आ गयी।

सोचने लगी, कितना अच्छा, कितना मासूम और निश्चल है शशांक। मैंने उसे

अपनी लगभग सारी बातें बता दीं ... अपने मां-बाप, भाई-बहनों के अलावा दोस्तों की, जिसमें लड़कियां कम लड़के ज्यादा थे। पर शशांक के चेहरे पर एक शिकन तक नहीं आयी। कितना उदार और उदान्त है वह। उल्टे उसने मेरी स्वतन्त्र सोच की तारीफ़ ही की।

अगली सुबह जरा देर से आँख खुली। शशांक जाग चुके थे। वो मेरे लिए चाय बना कर ले आए। चाय पर फिर हमने ढेरों बातें की। बातों ही बातों में शशांक ने मेरे उन पुरुष मित्रों से मिलने की इच्छा जाहिर की जो इस शहर में रहते थे। मेरी शशांक के अतिरिक्त अब किसी में रुचि नहीं रह गयी थी। पर शशांक की जिद पर मैंने डायरी निकाल कर इस शहर में रह रहे रजत और विकी के नम्बर मिला कर बारी-बारी से उनसे बात की। उन दोनों को अपना पता नोट कराया और उनसे मिलने की इच्छा जाहिर की।

शशांक के जाने के बाद मैं घर की सफ़ाई में लग गई। सफ़ाई के बाद स्नान। साज-सज्जा परिधान। तैयार होते हुए मैं व्यग्र सी थी ... चाहती थी रजत और विकी जल्दी से आ जाएं। मैं उन्हें दिखाना चाहती थी कि मैं कितनी खुश हूँ, सुखी हूँ। शशांक कितने अच्छे हैं।

यूँ रजत और विकी मेरे और दूसरे मित्रों की तरह ही थे पर उनके मॉडर्न सोच और स्वभाव के कारण वे मुझे कुछ ज्यादा ही पसंद थे। कॉलेज के दिनों में अक्सर हम कहा करते थे कि जिन्दगी में हम में से कभी कोई किसी मुसीबत में घिरेगा तो बाकी सब उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हो जायेंगे। इसके लिए उन्हें चाहे किसी की भी कितनी ही नाराज़गी क्यों न झेलनी पड़े। मैं लड़की थी इसलिए उन्हें यह आशंका रहती कि

शादी के बाद शायद मेरा उनसे सम्पर्क न रहे। मेरे पति उनसे मेरी दोस्ती शायद ही पसंद करें। ... पर आज मैं उन्हें यह दिखा देना चाहती थी कि मेरे पति दकियानूसी नहीं हैं, वे खुले दिल-दिमाग के हैं, उन्हें मेरी मित्रता पर कोई आपत्ति नहीं है।

अभी मैं इन्हीं विचारों में गलतान थी कि अचानक कालबेल बजी। दरवाज़ा खोला। सामने शशांक, रजत और विकी तीनों एक साथ खड़े थे। शशांक ने ही खुलासा किया ... 'चौराहे पर ये दोनों मुझसे ही मेरे घर का पता पूछ रहे थे।'

मेज़ पर नाश्ता लगाते वक्त शशांक नाश्ता लगाने में मेरी मदद करते रहें। मुझे अच्छा लगा। अपने मित्रों की नज़र में भी मैंने प्रशंसा का भाव देखा।

चाय के दौरान बातों और ठहाकों का जो दौर शुरू हुआ वह अपने साथ वक्त को भी बहा ले गया। मुझे लगा कि जैसे मैं कॉलेज के पुराने दिनों में लौट गई हूँ। शशांक बहुत खुश थे। रजत और विकी से मिल कर। बातों ही बातों में मेरी तारीफ़ शुरू हो गयी ... शशांक ने अपनी स्वर्गीय मां जी के प्रति मेरे सेवाभाव और कर्तव्यनिष्ठा की तो प्रशंसा की ही, रजत और विकी ने भी कॉलेज के दिनों में मेरे द्वारा किये गए सामाजिक कार्यों को गिना डाला, कॉलेज की राजनीति में मेरी सक्रिय भूमिका की खूब वाहवाही की।

मुझे लगा, मेरा पंख फूल रहे हैं। मैं चिड़िया होती जा रही हूँ। किसी भी पल उड़ना शुरू कर दूंगी। मैंने एक-एक कप चाय और का प्रस्ताव रखा और चाय बनाने के लिए उठने लगी। शशांक ने मुझे रोक दिया-'मैडम, तुम अपने मित्रों से बात करो। बंदा आप लोगों के लिए चाय बना कर लाता है।'

शशांक चाय बनाने किचन की ओर चला गया। रजत और विकी ने उसकी पत्नी सहयोगी इस अदा की खूब तारीफ की, मेरे भाग्य को सराहा, मेरे सफल दाम्पत्य के यूँ ही अनवरत बने रहने की शुभकामनाएं की।

चाय का एक और दौर। रजत और विकी अब शशांक के सामने बहुत खुल

विजटिंग कार्ड, जिन पर उनके एड्रेस थे, मेरी ओर सरका दिए। यह कहते हुए कि ज़रूरत पड़ने पर मैं उनसे कभी भी काण्टैक्ट कर सकती हूँ। वे सिर के बल हाज़िर हो जायेंगे।

मैं सोच रही थी कि रात के खाने में क्या बनाऊँ, तभी शशांक ड्राईगरूम में वापिस लौट आए। मैंने उन्हें रजत और

भावनाओं के साथ निष्ठुरता से पेश आते रहे।

शशांक बार-बार खेद प्रकट कर रहा था। सफ़ाई प्रस्तुत कर रहा था ... अपनी बूढ़ी बीमार मां की बिगड़ती हालत के कारण वह मुझ से विवाह करने के लिए मज़बूर हुआ था।

तो क्या मैं शशांक की पत्नी नहीं। मेरा विवाह सिर्फ़ एक अनुबंध था ? जिसकी अवधि मां जी के मरने के साथ खत्म हो गई ?

शशांक ने अपना कथन जारी रखा - 'मैं अपनी मां को बेहद प्यार करता हूँ। उनके लिए कुछ भी करने में मुझे कोई हिचक नहीं होती। पर मैं भी इन्सान हूँ। मेरी भी अपनी एक आत्मा है। निशि ने मेरी मां की आखरी सांस तक जो अथक सेवा की है उसकी कीमत आंकना नामुमकिन है। फिर भी यह फ्लैट मैंने निशि के नाम कर दिया है। साथ ही बैंक में उसके नाम इतनी रकम जमा कर दी है जिससे उसे पाँच हज़ार रुपये मासिक ब्याज मिलता रहेगा।'

फिर वह रजत और विकी की ओर उन्मुख हुआ- 'आप दोनों को आज यहाँ बुलाने का एक ही मकसद था। आप दोनों ही निशि के अभिन्न मित्र हैं। मुझे मालूम पड़ा है कि कॉलेज के दिनों से ही आप दोनों निशि को पाने की होड़ में लगे रहे हैं। ... मैं निशि को मुक्त कर रहा हूँ। आप तय कर ले कि आप में से कौन निशि का जीवन साथी बनेगा।'

मैं समझ नहीं पा रही थी कि अचानक यह सब हो क्या रहा है ? मेरे जीवन, मेरी सत्ता, मेरे वजूद की जैसे कोई अहमियत ही नहीं है। जैसे कि मैं कोई गरीब मुल्क होऊँ, जिसे बिना किसी कसूर के कोई शक्तिशाली तानाशाह देश अपने बमवर्षकों द्वारा तबाहो बरबाद कर

शशांक की गैर मौजूदगी में दोनों ने अपने विजटिंग कार्ड, जिन पर उनके एड्रेस थे, मेरी ओर सरका दिए। यह कहते हुए कि ज़रूरत पड़ने पर मैं उनसे कभी भी काण्टैक्ट कर सकती हूँ।

गए थे। हंसी-मज़ाक करने लगे थे। मज़ाक ही मज़ाक में रजत ने कह दिया अगर शशांक ने मेरे साथ विवाह न किया होता तो वह मेरे साथ शादी कर लेता। विकी कहां पीछे रहने वाला था। उसने कहा-वह तो आज भी मुझे अपनाने को तैयार है।

मुझे उन दोनों के ये मज़ाक अच्छे नहीं लगे पर शशांक को बुरे नहीं लगे। बल्कि चुहुलबाजी में वह भी उनके साथ शामिल हो गया। चुहुलबाजी में ही रजत और विकी से उसने यह पुष्टि करवा लेनी चाही कि उसके न रहने पर वे मेरा साथ देंगे, मुझे बेसहारा नहीं रहने देंगे। रजत और विकी तो जैसे नशे में थे। दोनों ने खूब बढ़-चढ़ कर वादे किये थे।

मुझे अजीब लग रहा था। यह कैसी चुहुलबाजी है ? ऐसे घटिया मज़ाक क्यों कर रहे हैं शशांक ?

तभी अचानक शशांक का मोबाईल बज उठा था। वे मोबाईल लेकर बाल्कनी में चले गए थे।

उनके जाने के बाद रजत और विकी से यूँ ही औपचारिकतावश डिनर के लिए आग्रह किया था। वे तत्ज़ट मान गये। शशांक की गैर मौजूदगी में दोनों ने अपने

विकी के कार्ड दिखाए। उन्होंने एक नज़र डाली और हंस कर कार्ड वहीं मेज़ पर रख दिए। फिर गम्भीर मुद्रा में बोले 'अब मैं जो बात कहने जा रहा हूँ और जिसके लिए मैंने विकी और रजत को बुलाया है ...'

इतना कह कर शशांक रूक गए। शायद उनके भीतर कोई संकोच या खलबली या ऊहापोह थे। या हो सकता है उन्हें कोई चुहुल सुझी हो। मेरे अन्दर उत्सुकता और भय दोनों ही घर कर गए थे। रजत और विकी भी शशांक को गहरी नज़रों से देखने लगे थे।

कुछ देर चुप रह कर शशांक ने खुद को संयत किया था, फिर बोले थे- 'मैं आज शाम की फ्लाइट से दुबई जा रहा हूँ-अकेले। और अब कभी वापिस नहीं आऊँगा। दुबई में मेरी पहली पत्नी मेरी प्रतीक्षा कर रही है।'

यूँ लगा जैसे मेरे सिर पर आसमान टूट कर आ गिरा हो। उनके शब्द मेरे कलेजे में बर्द-भाले की तरह चुभे थे। मेरा आहत वजूद किसी क्षत-विक्षत लाश की तरह हो गया था ... यूँ चीट, इसलिए शादी के तीन माह होने पर भी तुम देह संसर्ग से बचते रहे। मेरी कोमल

देने पर तुल गया हो। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा कि शशांक जो कुछ कर रहा था वह सच है, लेकिन उसके हाथ में फ्लैट की रजिस्ट्री के कागजात और पास बुक थी। सच का प्रत्यक्ष प्रमाण।

अपनी बात पूरी कर चुकने के बाद बिना मेरी प्रतिक्रिया जाने शशांक सारे कागजात सेण्टर टेबल पर रख कर अपने कमरे में चला गया था। उड़ने की तैयारी करने के लिए।

मेरी तरह कुछ देर तक रजत और विकी भी अवाक से सोफे पर बैठे रहे थे। उनके लिए यह सब अप्रत्याशित था। होता भी क्या नहीं, जब मैं ही शशांक को इतने दिनों तक साथ रह कर समझ नहीं पायी थी तो कुछ ही घण्टों में वे क्या बूझ पाते।

कुछ देर तक दोनों असमंजस की स्थिति में रहे फिर सोफे पर एक-दूसरे के

करीब सरक गए। कुछ देर तक वे संकेतों की भाषा में संवाद करते रहे फिर एक-दूसरे के कान में कुछ फुसफुसाने लगे। उनकी फुसफुसाहट के कुछ अस्फुट शब्द मेरे कानों से भी टकराये ... 'जूठी पत्तल ... बासी भोजन ... परित्यक्ता ... छुट्टड़ ... उफ सेकेंड हैण्ड ...'

मुझे काटो तो खून नहीं ... उफ! ये है मेरे पुरुष मित्र! शादी से पूर्व जो मेरे साथ जहन्नुम तक जाने के दावे किया करते थे। मेरे फेयरवेल के वक्त कॉलेज हाल में जो सम्बत स्वर में गा रहे थे - 'तुम अगर मिल जाओ, जमाना छोड़ देंगे हम' ... जो मुझे ऐश्वर्या राय की सगी बहन कहते थे ... मेरी मेहरबानी पाने के लिए जो मेरी सैण्डलें उठाने को भी तत्पर रहते थे। ...

पहले शशांक के छोड़े शब्दों के नापाम बम और अब रजत और विकी

की छोड़ी शब्द मिसाइलें ... मेरा गरीब मुल्क सा वजूद चिन्दी-चिन्दी होता जा रहा था।

रजत और विकी कुछ देर तक ऊहापोह की हालत में सोफे पर बैठे कसमसाते से पहलू बदलते रहे। अचानक स्प्रिंग की तरह उछल कर विकी खड़ा हो गया था- 'क्षमा करना निशा, एक ज़रूरी मीटिंग है मेरी। बास बहुत कड़क है। न गया तो तूफान खड़ा कर देगा। चलता हूँ मैं ...'

चलने से पहले विकी ने मेरी नज़र बचा कर सेण्टर टेबल पर रखा अपना विज़िटिंग कार्ड उठा लिया था। रजत भी विकी को ड्रॉप करने के बहाने उठ खड़ा हुआ था। जाने से पहले वह भी अपना कार्ड लपकना नहीं भूला था। ◆



■ गज़ल : दिनेश 'मंज़र'



नाम : दिनेश "मंज़र"

जन्म तिथि : 10.10.1965

जन्म तिथि : दिल्ली

शिक्षा : स्नातक (राजनीतिक शास्त्र विशेष), 1986, दिल्ली विश्वविद्यालय

व्यवसाय : वित्त मंत्रालय में सहायक लेखा अधिकारी, वर्तमान में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद में प्रतिनियुक्ति पर
लेखन : गज़ल संग्रह "चाँद के गाँव में" प्रकाशनाधीन और एक कविता संग्रह प्रेस में, विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन और विभिन्न प्रचारण माध्यमों से पाठकों से सीधा सम्वाद, अनेक विधाओं में लेखन, हिंदी गज़लकार के रूप में चर्चित, प्रतिनिधि संग्रहों में रचनाएं शामिल

पता : WZ-528, गली नं. 18-G, साध नगर, पालम कालोनी, नई दिल्ली-110045

फोन नं. : 09968484961, 64571610

ई मेल : sonidk10@yahoo.com

1

वो मुझको याद करके, मुद्दतों, तड़पे हैं, रोये हैं
मुझे फिर ओढ़कर, मुझको, बिछौना करके सोये हैं।
गुनहगारों की बस्ती ने, फरिश्ता जानकर हमको
कभी सौंपें हैं ग़लुदस्ते, कभी कांटे चुभोये हैं।
जहाँ सिक्कों की धुन पर हर किसी को नाचते देखा
वहीं पर छुप के कोने में, मेरे अरमान रोये हैं।
कहाँ तक साथ दोगे, तुम ये सोचो और तुम जानो
तुम्हारे साथ जीने के, हसीं सपने संजोये हैं।
जगाना मत हमें ऐ चाँद, तारों! आस्मां वालों
मिली थी संगदिल दुनियां, बड़ी मुश्किल से सोये हैं।

2

कौन हूँ मैं मुझको अपनी सुध न आई आज फिर
रूप ने तेरे नई बिजली गिराई आज फिर।
दौरे-गर्दिश में जो तेरी याद आई आज फिर
मुझमें राहे-ज़िंदगी भी मुस्कराई आज फिर।
ख़्वाब थी, क्या रंग था, क्या शै थी जाने ज़िंदगी
बाद मुद्दत के वो हंसकर, जगमगाई आज फिर।
उसने इस मासूमियत से फिर किया वादा वफ़ा
याद मैं करता हूँ, अपनी, बेवफ़ाई आज फिर।
दूर मुझसे उसने अपनी ज़िंदगी के ग़म रखे
मन मेरा रखने को वो नज़दीक आई आज फिर।

3

इस कदर बेचैनियां बढ़ जायेंगी, सोचा ना था
यूँ तेरी यादें हमें तड़पायेंगी, सोचा ना था।
नाम तेरा और मेरा, हो जायेगा यक्सां यहाँ
और फिर रातें विरह की आयेंगी, सोचा ना था।
महफ़िलों में भी मैं खुद को पाऊंगा तन्हा कभी
ख़िलवतें इतनी मुझे भा जाएंगी सोचा ना था।
रात दिन तेरे ख़यालों की डगर से आयेंगे
बदलियां यादों की ऐसी छायेगी सोचा ना था।
गैर के पहलू में देखूंगा मचलते मैं तुझे
आस की कलियां मेरी मर जायेंगी, सोचा ना था।



■ गज़ल : इन्दु श्रीवास्तव



संक्षिप्त परिचय :

गज़ल लेखन में रुचि। 'हंस', 'साक्षात्कार' आदि पत्रिकाओं में गज़लों प्रकाशित। गज़लों का संकलन 'आशियाने की बातें' प्रकाशित। 'शब्द संगत' पत्रिका की कार्यकारी संपादिका।

संपर्क - एम.आई.जी. 1/6/101, इंदिरा नगर, रीवा, मध्य प्रदेश।

1

तीन और टप्पर उठाकर रख दिया।
उसने मेरा घर उठाकर रख दिया।
ठण्ड से ठिठुरी हुई थीं हड्डियां
फूस का बिस्तर उठाकर रख दिया।
दर्द से बेज़ार घायल मुल्क का
बोझ कांधों पर उठाकर रख दिया।
रब ने मेरे दिल में आशिक की जगह
सरफिरा शायर उठाकर रख दिया।
काम क्या करने लगे तुम आंख से
आजकल खंज़र उठाकर रख दिया।
एक हरकत सी हुई थी लाश में
कब्र का पत्थर उठाकर रख दिया।

2

दर्द का दौर गुज़र जाएगा
जो भी हारेगा बिखर जाएगा।
आज की सोच के जी ले बाबा
कल की सोचेगा तो मर जाएगा।
आईना देख के क्या होना है
खुद में ही देख संवर जाएगा
फूल पत्ते खिज़ां में जाएंगे
कौन कहता है शजर जाएगा।
मछलियां डर से भाग जाएंगी
जो तू पानी में उतर जाएगा।
रास्ता उसका शाम तक देखा
अब न आया तो किधर जाएगा।

3

शम्मा होने दे जाम होने दे
शाम का इन्तजाम होने दे।
जो हिजाबों में छिपके बैठा है
अब उसे हम कलाम होने दे।
हम तो रुसवा हैं बगावत के लिए
अब शहादत के नाम होने दे।
सफ़र उदास है रुकने के लिए
अपने दर को मकाम होने दे।
नए किस्सों का सिलसिला निकले
फिर कोई कत्ल-ए-आम होने दे।
जर्मी का कर्ज चुकाने के लिए
आसमां को गुलाम होने दे।

4

गठरियों में रोज का सामान बांधा चल दिए
एक बस्ती और एक मकान बांधा चल दिया।
झाड़ियों की लकड़ियां, बेकार गत्ते, कांडियां
रोटियों की जंग का ऐलान बांधा चलादिए।
ऐंठती आंतें इबारत भूख की पढ़ती रहीं
चीथड़ों में देह का सम्मान बांधा चल दिए।
बाढ़ में डूबे नदी के पार के सब झोंपड़े
कल्पना में एक रेगिस्तान बांधा चलादिए।
कुछ न पूछो ये बदन क्यों भार से दोहरा हुआ
पीठ से बीमार हिन्दुस्तान बांधा चल दिए।



■ कविता : अनामिका



परिचय : जन्म 1961, अंग्रेजी साहित्य में पी.एच.डी., हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित आधुनिक कविता में एक सशक्त हस्ताक्षर।

संपर्क : D2/83, पश्चिमी किदवई नगर, दिल्ली - 23

ईराक युद्ध से संबंधित

(युद्ध के दौरान सैनिक विधवाओं के हाथ उठाकर एक समवेत प्रार्थना की थी : युद्ध के खिलाफ! उसी प्रार्थना के शब्द अपने ढंग से सजाने की कोशिश यह कविता है। प्रार्थना का दृश्य अखबार में देखकर लगा कि उन औरतों में से एक-एक सूफी फकीर, राबिया हो गई है।)

बसरा की राबिया फकीर

‘एहि ठैयाँ मोतिया हेराय गैले, रामा-एहि ठैयाँ।’
बेगम अख्तर की टुमरी के ये मोती बसरा के थे :
कुछ औरतों की आँखों से झड़े थे, कुछ होंठों से!
उस समय की बात है यह जब
बगदार से औरतें आती थीं बसरा
बैंगनी पालकियों पर आसमान ओढ़कर!

मैं बैंगनी पालकी पर नहीं आयी थी, आयी थी पैदल
-बस अपनी छाँह ही लपेटकर।
तब से अब तक पैदल चली जा रही हूँ।
ठैयाँ भी ठैयाँ तलाशती-
एक सदी से दूसरी लाँघती
नाप रही हूँ रश्क की ही हद।
मुल्कों की सरहद पर
बिखरे हैं बसरा के मोती।
एहि ठैयाँ मोतिया हेराय गैले, रामा, एहि ठैयाँ।

एक हाथ में लुकाठी है मेरे,
दूसरे में पानी का मटका-
एक से चली हूँ बहिश्त राख करने
दूसरे से लपटें बुझाने दोजख कीं!
मुझमें बजती जाती हैं चिमटियाँ- बाउलों, सूफियों की!

नाच रही है धरती आज तलक
मेरी ही लय में-
मेरे टूटे घुँघरू, और बिखरे मोती-
बीनती हुई!
मेरी इन उखड़ी हुई साँसों में जो भँवर हैं-
नाच रहा है उनमें
सौ पत्तियों का कमल खूनमखून!

ये मेरे
दो हजार छह सालों से बढ़ते चले गये
धुआँ-धुआँ केश
अंधड़ में उड़कर जो छाये हैं आसमान पर-
छुपा रहे हैं चाँद-सूरज उसमें अपना चेहरा!
मेरी ये दूध-भरी छातियाँ हैं या कि हैं
ज्वालामुखियाँ ?

मेरी झुलसी बाँहों पर फिर से
उगने लगी हैं ये लाल पत्तियाँ।
मेरी ये चाक बेटियाँ
उठ रही हैं फिर से
उसी अग्नि पाखी-सी!

चटक रहे हैं अण्डे सुलगते हुए घोंसले में
लेकिन ये जो टप-टप बरस रहे हैं
हव्वा-आँखों से-

बसरा के मोती नहीं हैं,
सृष्टि के पहले सितारे की हैं चिनगियाँ!

खुदा के समन्दर में दो जहाज़ उलटे थे-
दोनों से गढ़े गये थे होंठ औरत के।
तूफानों की हाहा-साँय-साँय बहती है
दोनों इन उलटे जहाज़ों में!

डरना, उनकी चुप्पी से डरना,
बसरा-बगदाद एक करना
कि ठैयाँ नहीं जानती नैया
बिखरे हुए मोतियों की!

युद्ध विराम

जो गरजते हैं, बरसते नहीं-
यह कहावत बादलों पर तो लागू है, बमों पर नहीं!
वे बरसते हैं गरजते हुए-
तीन दिनों से नहीं बरसे मगर!
खुलने लगे हैं शटर!
बच्चे मचलने लगे हैं अब
जाने को बाहर : खेल के मैदान तक!
छटर-पटर हैं बैट-बॉल!

इसी तरह से झकाझूमर में बीतेगा दिन!
ऐसे ही किसी-किसी शाम
जब देखते ही रह जाते हैं हम आसमान!
भूल जाती हैं हमें प्रार्थनाएँ :
कोई सुर उठा नहीं पाते!
बेचारी भूली हुई प्रार्थनाएँ

खुद ही तब उठती हैं
घुटने पकड़े-पकड़े
किसी बड़ी बी की तरह,
ताकत लगाकर उचारती हैं खुद को वे खुद ही-
डगमग-डग!

किसी-किसी रात जब हो जाते हैं नास्तिक हम,
करते नहीं किसी सच का आह्वान,
खुद सच करता है प्रवेश
हृदय में हमारे-
चिरपरिचित पीड़ा के साथ!



स्त्रियाँ

पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज़
बच्चों की फटी कॉपियों का
चनाजोर गरम के लिफाफे बनाने के पहले!
देखा गया हमको
जैसे कि कुप्त हो उनींदे
देखी जाती है कलाई घड़ी
अलस्सुबह अलार्म बजने के बाद!
सुना गया हमको

यों ही उड़ते मन से
जैसे सुने जाते हैं फिल्मी गाने
सस्ते कैसेटों पर
ठसाठस्स टुँसी हुई बस में!
भोगा गया हमको
बहुत दूर के रिश्तेदारों के
दुःख की तरह!
एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं-
हमें कायदे से पढ़ो एक-एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी० ए० के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन!
देखों तो ऐसे
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती हुई आग!
सुनों हमें अनहद की तरह
और समझों जैसे समझी जाती है
नई-नई सीखी हुई भाषा!
इतना सुनना था कि अधर में लटकती हुई
एक अदृश्य टहनी से
टिड्डियाँ उड़ीं और रंगीन अफवाहें
चीखती हुई चीं-चीं
'दुश्चरित्र महिलाएं, दुश्चरित्र
महिलाएँ-
किन्हीं सरपरस्तों के दम पर फूली-फैली
अगरधत्त जंगली लताएँ!
खाती-पीती, सुख से ऊबी
और बेकार बेचैन, आवारा महिलाओं
का ही
शगल हैं ये कहानियाँ और कविताएँ...
फिर ये उन्होंने थोड़े ही लिखी हैं
(कनखियाँ, इशारे, फिर कनखी)
बाकी कहानी बस कनखी है।
हे परमपिताओं,
परमपुरुषो-
बख़्शो, बख़्शो, अब हमें बख़्शो!



<p>बेजगह ‘अपनी जगह से गिरकर कहीं के नहीं रहते केश, औरतें और नाखून’- अन्वय करते थे किसी श्लोक का ऐसे हमारे संस्कृत टीचर। और मारे डर के जम जाती थीं हम लड़कियाँ अपनी जगह पर! जगह ? जगह क्या होती है ? यह, वैसे, जान लिया था हमने अपनी पहली कक्षा में ही! याद था हमें एक-एक अक्षर आरंभिक पाठों का- ‘राम, पाठशाला जा! राधा, खाना पका!</p>	<p>राम, आ बताशा खा! राधा, झाड़ू लगा! भैया अब सोएगा, जाकर बिस्तर बिछा! अहा, नया घर है! राम, देख, यह तेरा कमरा है!’ ‘और मेरा ?’ ‘ओ पगली, लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती हैं उनका कोई घर नहीं होता!’ जिनका कोई घर नहीं होता- उनकी होती है भला कौन-सी जगह ? कौन-सी जगह होती है ऐसी जो छूट जाने पर औरत हो जाती है कटे हुए नाखूनों, कंघी में फँसकर बाहर आए केशों-सी</p>	<p>एकदम से बुहार दी जाने वाली ? घर छूटे, दर छूटे, छूट गए लोग-बाग, कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छूटे! छूटती गई जगहें। परंपरा से छूटकर बस यह लगता है- किसी बड़े क्लासिक से पासकोर्स बी० ए० के प्रश्नपत्र पर छिटकी छोटी-सी पंक्ति हूँ- चाहती नहीं लेकिन कोई करने बैठे मेरी व्याख्या सप्रसंग! सारे संदर्भों के पार मुश्किल से उड़कर पहुँची हूँ, ऐसे ही समझी-पढ़ी जाऊँ जैसे अधूरा अभंग!</p>
--	---	---



■ कविता : सुभाष सिंगाठिया



परिचय : 7 सितम्बर 1971 को जन्मे सुभाष ने हिन्दी में एम० ए० और व्यावसायिक प्रबन्धन के साथ एम० काम० किया है। पिछले 15 वर्षों से कई समाचार पत्रों में साहित्य संपादक का दायित्व निभाया। दिल्ली, जयपुर दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से कविताओं का प्रसारण।

संपर्क : 15 नागपाल कॉलोनी, श्री गंगानगर-335001, राजस्थान।

मो.- 09829099479

खण्डित स्मृतियों वाला जला हुआ कोलाज कवि —कथाकार नवीन सागर को पढ़ते हुए

वह उस क्लॉट चेहरे को पौँछने ही वाला था
कि उसे लगा नहीं...
नष्ट हो जाएगी इससे उसकी मौलिकता
व्यथित शब्दों से अटी किसी कविता-सा
यूँ ही अच्छा लगता है यह
उसने किसी गम्भीर कविता से उस चेहरे को
कैनवस पर उकेरकर
स्थिर परछाई-सा टाँग दिया दीवार पर
और एक बोझिल शून्य सा सन्नाटा
पसर गया फ्रेम के आस-पास घनी-काली रात-सा
अब चेहरा और सन्नाटा
परस्पर प्रहरी बने आश्वस्त खड़े थे
खण्डित स्मृतियों वाले किसी जले हुए कोलाज-से
अपने-अपने वजूद के साथ।

स्त्री-सत्ता की अभिव्यक्ति

सम्भावनाओं की
अकाल मृत्यु ही तो है
बिम्बों का मर जाना
और बिम्बों का प्रतिविम्बन
सम्भावनाओं का विस्तार
ऐसा है तो फिर
प्रतिविम्बन की इस क्रिया को
स्त्रीलिंगी - संज्ञा मान लेने में
कहाँ हर्ज है
जब इतना मान लेने भर से ही
तैरने लगते हैं इस पौरुषपूर्ण-समय में
स्त्री-सत्ता की अभिव्यक्ति के प्रतिविम्ब
जैसे मेरी बेटियों की उन्मुक्त हँसी।

अपनी कविता की चौहद्दी में लड़की
प्रभा खेतान व मैत्रेयी पुष्पा को पढ़ते हुए

हे पुरुष परमेश्वर!
परमेश्वरी विशेषण तुम्हारी सत्ता का 'अव्यय' जो ठहरा
कविता लिखती किसी लड़की को
कैसे जानोगे तुम
उसकी अपनी कविता के यथार्थवादी - कल्पनालोक में
कुछ भी करते हुए
कि अपनी प्रेमिल - कल्पनाओं की
लम्बी - भावुक उड़ानों में
कहाँ-कहाँ गई
क्या-क्या किया
सोयी-जागी किसके साथ
और तुम्हारी वर्जनाओं वाली
लक्ष्मण रेखा-सी देहरी लाँघती हुई
कब-कब उतरी 'उस' प्रेम में
जिससे खतरे में पड़ता आया है तुम्हारा 'शुचिता आग्रह'
कि तुम्हारे लिए 'उत्तम-रति' का
'सामान' जुटाने वाली यह भोग्या
तुम्हारी नज़र में
अपने 'स्त्री-धर्म' की गठरी बाँध
उसे रखकर तुम्हारे घर के
किसी ऊँचे बने आले में
कब हो जाए उतनी स्वच्छन्द

जितने तुम होते आए हो आज तक
जिससे दरकने लगता है तुम्हारा वर्चस्व
कि तुम्हारी 'सत्ता' को सरेआम धत्ता बताते हुए
कब बोलने लग जाए उसकी खामोशी धारा-प्रवाह
और बना ले अपनी कविता से एक ऐसी चौहद्दी
जिसमें हीगेल, नीत्शे और शंकराचार्य की
मान्यताओं वाली स्त्री के ठीक विपरीत
ऐतिहासिक और विकसित स्त्री
करती हो निर्भय निवास।

दरकते मील के पत्थर

फिलहाल व्यस्त हूँ
अन्तर्द्वन्द्वों से मन्त्रणा करने में
या व्यस्त हूँ अन्तर्द्वन्द्व
बतियाने में मुझसे
यह कहना कठिन है
वैसे यह जानना महत्त्वपूर्ण भी नहीं है
और ना ही कोई रहस्य है इस मन्त्रणा में
मोनालिसा की उस गूढ़-मुस्कान-सा
असल में यह सारी कवायद
गुम होने के अन्तिम पड़ाव पर खड़े
उन दरकते मील के पत्थरों
और जीर्ण-शीर्ण विमर्शों को खंगालने का
प्रयत्न भर है।



■ कविता : अनिरुद्ध सिंह सेंगर 'आकाश'



जन्म तिथि : 3-10-1961

जन्म स्थान : लिङऊपुर, (जनगम्नपुर), जालौन (उ.प्र.)

शिक्षा : बी. एस-सी., डिप्लोमा ऑफ ऑर्फथेल्मिक असिस्टेंट

विधा : कविता, लेख, उपन्यास

प्रकाशन : आकाश के मोती (कविता संग्रह) प्रकाशित, पत्र-पत्रिकाओं व काव्य संकलनों में रचनाएँ प्रका.

प्रसारण : आकाशवाणी केन्द्र गुना से कविता व वार्ता का समय-समय पर प्रसारण

सम्प्रति : स्वास्थ्य विभाग गुना में नेत्र-चिकित्सा सहायक पद पर पदस्थ।

प्रधानसंपादक : साहित्य क्रांति (मासिक पत्रिका), नेत्र-ज्योति (त्रै-मासिक पत्रिका)

संपादित कृतियां : काव्य संकलन—सृजन के स्वर, साहित्य गंगा, नक्षत्र, भोर की आहट, क्षितिज, कोंपले, इन्द्रधनुष, पृथ्वी-पुत्र

सम्पर्क : भार्गव कॉलोनी गुना, म.प्र. 473001 फोन : 07542-501918 ईमेल : sengar@mantrafreenet.com

इस सदी का बच्चा

बच्चा खिलौने से खेलता

बोतल से पीता दूध

छूता मां के आंचल को

बच्चा

चाय की गुमटी में

धोता जूटे कप-गिलास

बालश्रम का उड़ता उपहास

बच्चा

हाथ में लिये कटोरा

मुंह पर लिये याचना

हृदय में लिये वेदना

मांगता भीख

बच्चा

ऊंट दौड़ का हिस्सा

रोजगार बन गया है

मनोरंजन का व्यापार बन गया है

बच्चा

जिसकी पीठ पर

बोझ बन गया बस्ता

बच्चे के पास

अब नहीं बची किलकारी

जिसमें ब्रह्मांड दिखता था

बच्चा

अब नहीं मांगता

खेलने के लिए चन्द्र खिलौना

चाँद में भी अब उसे दिखती है रोटी

बच्चा

हंसते हुए काँपता है

बच्चा

बच्चा होने से डरता है।



प्रतिबंध

उस लड़की के हँसने भर से

तुम्हें हो जाता है ऐतराज

या छिपा रहता है

तुम्हारे अंदर धिनौना कीड़ा

जो नहीं देख सकता

एक लड़की को हँसते हुए

तुम्हें अपने ऊपर नहीं रहा भरोसा इसलिए

शक की सुई तुम्हें सोने नहीं देती

तुम्हारी कमजोरी कोई जाने

तुम लगा देते हो आरोप

खिलते फूलों पर,

भूल जाते हो

हँसना जीवन की मौलिकता है

तुम्हारा वश चले तो तुम लगा दो प्रतिबंध

समूची हँसी पर

तुम लगा देते हो ताले

सिल देते हो होंठ मासूम लड़कियों के

उनका चहकना-फुदकना तुमने छीन लिया

वे तुम्हें कभी माफ नहीं करेंगी



■ कविता : अशोक बाजपेयी



जन्म तिथि : 01-11-1952 (कानपुर)

लगभग 35 वर्षों से कविता एवं कहानी पर काम कर रहे हैं, नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर, रेडियो एवं दूरदर्शन पर कविताओं का प्रसारण, विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित एवं अलंकृत।

सम्प्रति : रक्षा प्रतिष्ठान में कार्यरत।

सम्पर्क : 124/680, बी-ब्लॉक गोविन्द नगर, कानपुर, उ० प्र०।

पिंजड़े से पिंजड़े तक

पिंजड़े में	
बन्द पक्षी	
फड़फड़ाता है	उसे खा जाने को बेताब थे
उड़ने के लिए	उसने बचाव में उड़ना चाहा
और	पर पंख बेकार हो चुके थे
मालिक	वह गिर पड़ा
राम-राम रटाता है	उसी पिंजड़े में
पक्षी सोचता है	और
यह भी उम्र कोई	मरा-मरा रटने लगा
राम-राम कहने की है	मालिक खुश था
यह उम्र तो	अब यह
उड़ने की है	राम-राम जरूर कहेगा
और इसीलिये उसने	वाल्मीकि की तरह।
राम-राम नहीं रटा	पर वह मरा-मरा कहते -कहते
आखिर मालिक ने	खुद मर गया
उसे छोड़ दिया खीझ कर	काश
उसने जब खुली हवा में देखा	उसे छोड़ दिया जाता
सामने उसके अपने ही दुश्मन	सही समय उड़ने के लिए
बिल्ली कौआ और कुत्ता	तो शायद वह
आदिम हौव्वा और इंसान	बचाव कर लेता
के रूप में नजर आए	इन खूंखार भेड़ियों से।
जो	
लाल-लाल आँखें लिए	□

■ गीत : डॉ. प्रतीक मिश्र



जन्म तिथि : 15 अगस्त 1949

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी) पी-एच.डी.

सम्प्रति : रीडर, हिन्दी-विभाग

डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर।

प्रकाशित कृतियाँ : पोर-पोर टूटने (गीत), खुशबुओं के घर में (गज़ल) काँटे और गोखरू (सामाजिक यथार्थ बोध की कविताएं) बिरह बीथी (सवैया कृति) शब्दों की वल्गाएं (गीत) मन गोकुल है जाए (राग निबद्ध पद) गीत सुधियों के, शिखर-शिखर घाटी-घाटी (पर्वत संदर्भ थे गीत) तथा 'हिन्दी पत्रकारिता सिद्धान्त और प्रयोग' सहित अनेक समीक्षा कृतियाँ। कानपुर के इन्ह कवियों की रचनाओं एवं जीवन परिचय था संकलन, सम्पादन, प्रकाशन।

विशेष : साहित्य की विविध विधाओं में कार्य, पत्रकार चित्रकार व हिन्दी-सेवी के रूप में विशिष्ट पहचान।

1

जो प्यास रेत के भीतर है
उसकी पहचान करे कोई।

ऊपर-ऊपर का ठण्डापन,
भीतर-भीतर की यह दहकन,
दहकन के भीतर जो दहकन
उसका अनुमान करे कोई।

जो प्यास रेत के भीतर है
उसकी पहचान करे कोई।

प्यासे मन का यह विस्तारण,
किस सीमा तक है, किस कारण,
जो प्यास हाँफती भाग रही
उसका भी मान करे कोई।

जो प्यास रेत के भीतर है
उसकी पहचान करे कोई।

झूठी भी कुछ बातें होंगी,
भ्रमवाली कुछ रातें होंगी,
बातों-बातों में इस झूठे
सच का विष पान करे कोई।

जो प्यास रेत के भीतर है
उसकी पहचान करे कोई।



2

क्या बतलाएँ दिन में
कितनी बार सामने आए हैं।
कितनी बार सपने में आए
इतराए, इठलाए हैं।

अधरों पर मुस्कान प्राण को,
मन को, जो पायल कर दे,
आँखें वहीं शरारत बाली
चितवन जो घायल कर दें,
साँस-साँस में सम्मोहन के
जादू सभी जगाए हैं।

पहली दो बातों से सौ बातें,
सौ से सौ-सौ बातें,
फिर अपने से बातें करते
अब तक थकी नहीं रातें,

मिलन एक दो पल का, पर
प्रतिफल वे साथ निभाए हैं।

एक स्वप्न नर्तन करता है
नयनों के आगे-आगे
जाने क्या बुनते रहते हैं
आँखों के अरूणिम धागे,

जाने किस सुधि में खोए हैं
सब सुध-बुध बिसराए हैं।



परायी पीड़ा का परागा: बर्फ में फंसी मछली

‘कहानी या उपन्यास लिखना मेरे लिए सिर्फ लिखना नहीं, एक प्रतिबद्धता है। प्रतिबद्धता है पीड़ा को स्वर देने की। चाहे वह खुद की पीड़ा हो, किसी अन्य की पीड़ा हो या समूचे समाज की पीड़ा। यह पीड़ा जब हृदय लांघती है तो मेरे लिखने में इसकी झलक, झलका (छाला) बन कर फूटती है।’ यह आत्मकथ्य है लेखक दयानंद पाण्डेय का। पराये पांव में फटी बिवाई की पीड़ा एक संवेदनशील लेखक ही महसूस कर सकता है। इस सन्दर्भ में दयानंद पाण्डेय का नया कहानी संग्रह ‘बर्फ में फंसी मछली, उनके उपरोक्त आत्मकथ्य की कसौटी खरा उतरता है।

संग्रह में मानवीय पीड़ा के विविध आयामों की कुल दस कहानियां हैं। संग्रह की पहली कहानी ‘बर्फ में फंसी मछली’ एक ऐसे नयी पीढ़ी के व्यक्ति की कहानी है, जो इण्टरनेट पर चैटिंग का खेल खेलते-खेलते एक रूसी स्त्री के प्रेमपाश में बंध जाता है। अपनी पत्नी और बच्चों से छुपा कर खेले जा रहे इस खेल का जब दुखांत होता है तो पत्नी के सामने नायक की स्थिति बर्फ में फंसी मछली सादृश्य हो जाती है-‘वह नहीं रही।’ वह बुदबुदाया - ‘वह मर गई।’... ‘कौन मर गई ?’ पत्नी अचकचाई। ... ‘वहीं जिसके लिए रूस जा रहा था।’ (22)

संग्रह की अगली कहानी ‘संगम शहर की लड़की’ प्रेम में पागल एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जिसका विवाह एक धोखेबाज विवाहित पुरुष से हो जाता है।

अपने साथ इतना बड़ा छल हो जाने के बावजूद भी वह ऐसे घटिया आदमी से तलाक नहीं लेना चाहती। स्त्री मन की गड़गड़ाने जटिलता की कहानी है यह इसी तरह मानसिक रूप से उलझे हुए शख्स की कहानी है ‘कन्दई लाल’। यह शख्स गलतियां करके हर बार पछताता है फिर भी बार-बार उन्हीं गलतियों को दोहराता है। कहानी में मानव की जटिलताओं का सफल चित्रण है।

‘चनाचोर वाले चतुर्वेदी जी’ एक चरित्र प्रधान कहानी है। वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था एक ईमानदार अधिकारी को बुहार कर कैसे कूड़े के ढेर पर फेंक देती है इसका कारुणिक दस्तावेज है यह कहानी। कहानी में अगर चतुर्वेदी जी की ईमानदारी के लिए अपने अधिकारियों से की गई मुठभेड़ों के कुछ प्रसंग होते तो कहानी और अधिक प्रमाणिक और सशक्त हो सकती थी। ‘घोड़े वाले बाऊ साहब’ ध्वस्त हो गए सामन्तवाद की टूटन और विघटन की कहानी है। ‘बाऊ साहब के पास घोड़ा नहीं था, यह वह मन मार कर बरदाश्त कर गए पर अब आन भी न रहे यह उन्हें बरदाश्त नहीं था।’ ... ‘अगर यह सब साले ऋषिपुत्र हैं तो अच्छा था निसंतान ही रहते। निरवंश ही रहते। आखिर क्या जरूरत थी उधार के अंश से वंश चलाने की।’ (पृष्ठ: 59) कहानी के ये गूढ़ार्थ महाभारतकालीन नियोग पद्धति की याद दिला जाते हैं।

‘मन्ना जल्दी आना’ कारुणिक पुकार है कहानी के नायक मन्ना के उस

वर्षों से घर में पल रहे पालतू तोते मिट्टू की, जो परिस्थितिवश बांग्लादेश निवासित किए जा रहे अपने मालिक से विदा की बेला में लगता है। पक्षियों में भी प्रेम, आत्मीयता और अपने पन की मानवीय भावनाएं भरपूर होती हैं बशर्ते कि इन्हें समझने और महसूस करने की इंसान अगर कोशिश करें। कहानी का तानाबाना हालांकि एक भारतीय मुसलमान की संदिग्ध नागरिकता और उसके निवासन को लेकर बुना गया है पर कहानी का मूल स्वर पक्षी और इंसान की आत्मीयता ही है।

भारतीय विवाह पद्धति पर प्रश्नचिन्ह खड़े करती है इस संग्रह की लम्बी कहानी ‘मैत्रेयी की मुश्किलें’। उस भारतीय समाज में जहाँ विवाह एक झांसा है, दमन का डण्डा है, शोषण का सबसे कारगर शस्त्र है। कहानी की नायिका मैत्रेयी की मुश्किल यह है कि वह भावुक है, संवेदनशील है और अपने प्रिय पुरुष के साथ अपना मनपसंद जीवन जीना चाहती है, लेकिन अधिकांश भारतीय पुरुष प्रेम के नाम पर स्त्री देह के आकांक्षी ही होते हैं। ऐसे ही स्त्री देहाकांक्षी पुरुष विवाह के नाम पर बार-बार मैत्रेयी से छल करते हैं और अन्त में उस पर आवारा, कुतिया और रण्डी के विशेषण चस्पा कर उसे चुचके हुए आम की तरह कूड़े-करकट में तब्दील कर समाज बहिष्कृत कर देते हैं-‘कहां फंस गई मैत्रेयी तुम ? तुम्हें मिला भी तो यह साला अजय। वो साला मेहरा। इससे तो

अच्छा था कि तुम बिना विवाह के ही इसी जीवन में तितली बन कर खिलखिलाती उड़ती फिरती थी। शायद यह सारा आकाश, सारी पृथ्वी, सारी प्रकृति, सारी बारिश और फूलों की सारी महक तुम्हारी होती। गिरगिट उतने खतरनाक नहीं होते जितने अजय या मेहरा जैसे ये मर्द।' (पृष्ठ: 153)

संग्रह की शेष कहानियां भी पठनीय है।

पुस्तक का नाम : बर्फ में फंसी मछली
लेखक: दयानंद पाण्डेय
मूल्य: दो सौ पचास रुपये
प्रकाशक: सर्वोदय प्रकाशन,
दिल्ली-110032

प्रेम व मैत्री का दस्तावेज़ : जीरो रोड

नासिरा शर्मा अत्यन्त निडर और साहसी लेखिका है। ईरान के विवादास्पद धर्मगुरु अयातुल्ला खुमैनी का साक्षात्कार लेकर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था उनके लिए दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं। 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' की मिसाल उन जैसी कलमयोद्धिन के लिए ही बनी है। सूरज की किरणों की तरह वे पृथ्वी के किसी भी कोने में जाकर वे उसकी धड़कनों का जाएजा ले सकती है। प्रमाण है उनका नया उपन्यास 'जीरो रोड', जिसमें उन्होंने दुबई देश की पृष्ठभूमि के बहाने पूरे अरब देशों की आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक धड़कनों की नब्ज टटोली है।

उपन्यास का नायक है सिद्धार्थ। इलाहाबाद शहर के जीरों रोड मोहल्ले का रहवासी। ग्रेजुएट होने के बाद बेकारी के कारण पिता के विषबाणों से आहत वह जैसे-तैसे किसी एजेण्ट के माध्यम से नौकरी करने दुबई में अलग-अलग देशों से नौकरी या व्यापार करने और लोगों के सम्पर्क में आता है। जैसे कि श्री लंका का इन्जीनियर श्रीनिवासन, केरल से आया राम चन्द्रन, बंगलादेशीय सुदर्शन घोष, पाकिस्तानी उस्मान, ईरानी ताजिर फिरोज़ मीखची, इराकी व्यापारी असद खजूरी फिलीस्तीनी टेक्नीशियन सफ़ीर, फोटोग्राफर रमेश शुक्ला व उसका लेबनानी मित्र ईयाद, मोरक्कन मां व

फिलीस्तीनी पिता की संतान फ्रीलांस जर्नलिस्ट नबीला, इंगलैण्ड की पत्रकार कैथरीन इत्यादि। उसी की तरह सब हालात के मारे हुए हैं और नरक में बदलती जा रही दुनिया के लिए फ्रिकमंद हैं- 'साला कहीं सुकून नहीं। कल यहूदी भूने जा रहे थे, आज फिलीस्तीनी भूने जा रहे हैं। हर दहाई बाद सियासत बदलती है तो समय भी नयी करवट बदल नया इतिहास लिखने बैठ जाता है।' (40)

अपने इन्हीं मित्रों के सम्पर्क में आने के बाद सिद्धार्थ दुनिया को तबाह करने को आतुर अमेरिकी राजनीति को गहराई से समझता है। इन्सान और इन्सानियत से परचित होता है। तब वह अपने पर निगाह डालता है कि कैसे उसने अपने देश में हिन्दुत्ववादियों के बहकावे में आकर अपने प्रेम की हत्या कर डाली थी- 'वह गुनाह जो मुझे रात दिन अपने दोनों पाटों के बीच पीस रहा है। मेरी सांस रोक गला घोंट रहा है। पता नहीं वह प्रेम था या घृणा। (220)

उपन्यास का शीर्षक हालांकि 'जीरों रोड' है पर लेखिका ने उपन्यास के अधिकांश अध्याय सिद्धार्थ के दुबई में रहने और वहाँ रहते हुए वहाँ के जीवन व दुनिया भर की राजनीति को समझने-समझाने पर ही खर्च किए हैं- 'अंगोला में अपने कद के बराबर की एं के ...-47 लेकर चलते बच्चे देख कर अजीब

लगता था।', युद्ध बंद होने के बाद अंगोला सरकार को जब इन बच्चों की सुध आई और उन्हें स्कूलों में डाला गया- 'कला और साहित्य के जरिये उस समय जानते हो ड्राईंग टीचरों को देखने को क्या मिला। हर पेंटिंग में लाश, हथियार और तबाह घर। इन तस्वीरों के चलते हमेशा लाल रंग की कमी रहती थी।' (161)

इलाहाबाद के जीरो रोड पर केन्द्रित उपन्यास के जो कुछ अध्याय हैं उनमें सिद्धार्थ का परिवार और उसके सपने हैं, शहर की हिन्दू-मुस्लिम गंगा यमुनी संस्कृति को विषाक्त करने वाली साम्प्रदायिकता है, सिद्धार्थ की चाहत नूरा है, सिद्धार्थ को चाहने वाली सिद्धार्थ के पिता रामप्रसाद के मित्र जगतराम की बेटी कविता है और इलाहाबाद सड़क, मोहल्ले और संगम- 'मैं गंगा को बहुत मिस करता हूँ।' (61)

नासिरा शर्मा ने अपने इस उपन्यास में यह बात पूरी शिद्दत से स्थापित करने की कोशिश की है इंसान जब तक अपने देश में रहता है कुँए का मेढ़क बना रहता है, आसानी से साम्प्रदायिक मेढ़कों की टर्-टर् का शिकार हो जाता है। देश से बाहर निकलने पर (खास कर दुबई जैसे नवधनाढय लेकिन प्रगतिशील सोच के देश की ओर) उसे एक भरपूर खुला आकाश मिलता है। उसकी सोच और

दृष्टि का विकास होता है, उसके अन्दर भर दी गई साम्प्रदायिक घृणा नष्ट हो जाती है और प्रेम व मैत्री जैसी मौलिक

मानवीय भावनाओं पुनः लबरेज होने लगता है।

उपन्यास का नाम: जीरो रोड
लेखिका: नासिरा शर्मा
मूल्य: तीन सौ रुपये
प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ,
लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

एक निष्प्रयोजन यात्रा: जीवन एक यात्रा

सूरज स्रोत है प्रकाश का ऊर्जा का, प्राणों का, जीवन का। प्रतीक है ज्ञान का, विवेक का, विज्ञान का। चक्राकार सूरज को देख कर ही इंसान ने पहिए का आविष्कार किया और उसका जीवन गतिमान हुआ। इसलिए सूरज देवता है, मन्दिरों में पूजा जाता है, श्रदालु उसे जल अर्पित करते हैं। डॉ॰ शान्ति भारद्वाज 'राकेश' नवयुवक सूरज प्रकाश। उपन्यास तीन काल खण्डों में विभाजित है। प्रथम, 'सूर्योदय से पहले' अर्थात् स्वतन्त्रता से पूर्व का भारत। द्वितीय, 'कुरूक्षेत्रे' अर्थात् स्वतन्त्रता के पश्चात् विकास पथ की ओर अग्रसर भारत। उपन्यास की पृष्ठभूमि में है राजस्थान के एक रजवाड़े के अन्तर्गत आने वाला एक कस्बा और शहर। वहाँ के लोग, उनकी संस्कृति, रीति रिवाज, परम्पराएं और लोकजीवन।

जब यह उपन्यास मेरे हाथ में आया था और मैंने सरसरी तौर पर जब इसके तीन काल खण्डों पर दृष्टिपात किया था तो मुझे लगा था कि यह उपन्यास भी भगवान दास मोरवाल के बहुचर्चित उपन्यास 'काला पहाड़' सदृश्य ही होगा और यह भी आशा जगी थी लेखक देश की आजादी के इतिहास के कुछ अनछूए पहलुओं की यात्रा करायेगा। किसी अनजाने अछूते परिवेश और लोगों के जीवन की समस्याओं को सामने लायेगा। लेकिन उपन्यास पढ़ने के बाद यह सारा आशावाद निराशा में बदल कर रह जाता है। दर असल यह उपन्यास एक ऐसे

दुलमुल चरित्र वाले नायक सूरज प्रकाश के बचपन में स्कूल में दाखिल होने से लेकर उसके युवा होने पर शहर जा कर उच्च शिक्षा हासिल करने और शिक्षा के साथ-साथ प्रेम करने व रोजगार प्राप्त करने का जीवन वृत्तांत है, जिसमें देश की आजादी को लेकर न कोई क्रान्तिकारी जज़्बा है, न आजादी के बाद देश की तस्वीर बदलने की चाह। हां, नायक के पिता मास्टर दीन दयाल में जरूर यह जज़्बा कूट-कूट कर भरा है, जिसे वह अपने पुत्र के हृदय में रोपना चाहता है। इसीलिए वह अपने बालक बेटे को कस्बे के स्कूल में दाखिला दिलाते वक्त उसके घरेलू नाम घेवर को बदल कर सूरज प्रकाश रख देता है- 'देश की आजादी का अन्तिम संघर्ष चल रहा है। यह संघर्ष युवकों से कुछ भी मांगता हो, नौनिहालों से तो भविष्य की तैयारी मांगता है।' (पृष्ठ: 12)

यह है नायक के स्वतन्त्रता संग्राम में रूचि लेने वाले आदर्शवादी पिता का अपने पुत्र को लेकर स्वप्न। इस स्वप्न की बस एक झलक स्कूल में पढ़ रहे बालक सूरज प्रकाश में नज़र आती है, जब देश के स्वतन्त्रता होने से पूर्व नायक का कस्बा जिस देसी रजवाड़े के अन्तर्गत आता था, उस राजा के घर राजकुमार जन्म लेता है। इस खुशी में रियासत के स्कूलों में लड्डू बांटे जाते हैं- 'सूरज के स्कूल में यह हवा फैल गई कि जो लड्डू बांटे जा रहे हैं कि वो गुड़िया शक्कर के हैं।

हलवाई को दानेदार शक्कर दी गई थी लेकिन उसने घपला कर दिया।' (पृष्ठ: 29) इस घपले के विरुद्ध सूरज अपने नेतृत्व में स्कूल के लड़कों का जुलूस निकालता है और 'भारतमाता की जय' के नारे लगाता हुआ जुलूस को लेकर नाज़िम की कचहरी तक जाता है।

बस इस घटना के अतिरिक्त उपन्यास में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे लगे कि नायक के भीतर देश की स्वतन्त्रता के लिए कोई क्रान्तिकारी उबाल है। कस्बे की पढ़ाई खत्म कर सूरज आगे की शिक्षा के लिए शहर चला जाता है। शहर में कॉलेज के होस्टल में न रह कर वह किराये का कमरा लेकर रहने लगता है। पढ़ाई के दौरान ही वह अपनी ए सहपाठिनी रजनी से प्रेम करने लगता है। बजरंग नाम के एक छात्र से दोस्ती कर लेता है। पढ़ाई के दौरान ही वह अपनी दो पड़ोसनों, एक हलवाई की पत्नी व दूसरी एक डॉक्टर की पत्नी, से देह सम्बन्ध बना लेता है- 'सूरज ने पांव को हल्का सा सरकाया वो मुन्नी-चाची की बिछिया से टकरा गया।' इधर का पांव और उधर की बिछिया देर तक जुड़े रहे। ... सूरज के शरीर में फिर वैसी ही सनसनी दौड़ी जैसी श्यामा काकी (हलवाई की पत्नी) के साथ दौड़ी थी।' (पृष्ठ संख्या-227) इसके अतिरिक्त 'सूर्योदय के बाद वाले दूसरे खण्ड में कॉलेज की छात्र राजनीति, शहर के साम्प्रदायिक तनाव, सूरज की प्रेमिका

रजनी के हेडमास्टर पिता सिन्हा साहब का अपनी विधवा भाभी से अवैध यौन प्रसंग, नायक का इण्टर पास करना, गांव में नायक की मां के देहावसान का प्रसंग, महाविद्यालयों के युवा समारोह के माध्यम से नायक का 'सरस्वती निकेतन' के संस्थापक, अध्यक्ष और एक चालू किस्म नेता देव उपाध्याय उर्फ देव भैया के सम्पर्क में आना व सूरज का एक सुनसान मन्दिर में रजनी से गन्धर्व विवाह के प्रसंग है।

उपन्यास के तीसरे खण्ड में सूरज का आगे की पढ़ाई जारी रखने के लिए देव भैया की भ्रष्ट संस्था 'सरस्वती निकेतन' में नौकरी करने लगना, इसी के साथ एक भ्रष्ट सम्पादक के स्थानीय अखबार 'खबरदार' में पार्ट टाइम काम करने लगना- 'बाद में उसका माथा यह देख कर ठनका कि बनवारी गुप्त ठेकेदारों और भ्रष्ट अफसरों व कर्मचारियों का कच्चा चिट्ठा उजागर करने का डर पैदा करके उनसे अच्छी रकम ऐंठते थे।' (पृष्ठ: 208)

आर्थिक अवलम्ब के लिए सूरज देव भैया के जिस 'सरस्वती निकेतन' से जुड़ता है वह भी कोई पाक दामन संस्था नहीं है - 'बी० एड० महाविद्यालय में संस्था कोटे की सीटें भरने में भारी

अनियमितताएं और अनैतिक आचरण के किस्से संस्था के कई लोगों की जुबान पर हैं। एक दो छात्राओं से अस्मत् के सौदे की चर्चा भी दबी जुबान से सुनने को मिली। सरकारी अनुदान में गबन की शिकायतें भी दिल्ली तक पहुँची और जांच भी हुई लेकिन फिर सब कुछ ठण्डे बस्ते में चला गया।' (पृष्ठ: 244)

प्रश्न पैदा होता है कि आखिर नायक क्यों ऐसे भ्रष्ट लोगों और संस्थाओं से जुड़ता चला गया ? शुरू में अगर पता नहीं चला तो बाद में पता चलने पर क्यों उसने प्रतिरोध नहीं किया ? क्यों वह हर गलत को स्वीकार करता चला गया ? कहां गया उसके अध्यापक पिता का अपनी संतान का देश हित में काम करने का सपना ? उसकी मां का यह सपना- 'गंगा ने सोच लिया था कि सूरज को अपने लिए नहीं, सूरज के लिए तैयार होना है तभी वह दूसरों के लिए रोशनी बनेगा।' (पृष्ठ: 72)

पूरे उपन्यास में नायक का जो चरित्र उभर कर सामने आता है, वह दूसरे के लिए रोशनी बनने का नहीं सिर्फ अपनी प्रगति के लिए समझौते करते चलने वाले इंसान का है। नायक के चरित्र दौर्बल्य का यह आलम है कि अपनी प्रेमिका रजनी से गन्धर्व विवाह करने के बाद भी

वह जिस दूसरे मकान में अकेला रहता है, वहाँ भी एक विवाहिता स्त्री से यौन-सम्पर्क बना लेता है- 'सूरज का पूरा शरीर लाल पड़ गया। वह भाभी जी से लिपट गया। आँखें मुंद गईं। फिर उसने भाभी जी के पूरे शरीर को सहलाना शुरू कर दिया। दोनों शरीर एक-दूसरे में कसते चले गए।' (पृष्ठ: 227)

पूरा का पूरा उपन्यास ही विचारहीनता का शिकार है। उपन्यास की न कोई दिशा है, न मन्त्रिल। हाँ, सस्ते उपन्यास जैसी रोचकता जरूर है इसमें। शायद उपन्यास की दिशाहीनता का एहसास जब लेखक को हुआ होगा तो उपन्यास के अन्त को 'नायक के आदिवासियों के गांव में काम करने' से जोड़कर उसने आदर्शवादी बना दिया।

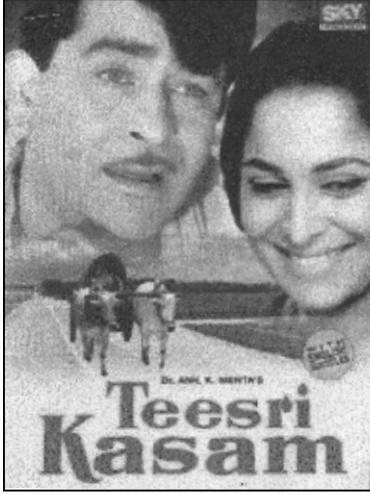
कुल मिला कर 'एक और यात्रा' एक अति साधारण उपन्यास है। जो रोचक तो है पर पाठकों की मानसिक भूख तृप्त नहीं करता।

पुस्तक का नाम : एक और यात्रा
लेखक : डॉ. शान्ति भारद्वाज 'राकेश'
मूल्य : एक सौ पचहत्तर रुपये
प्रकाशक : शैवाल प्रकाशन,
दाऊदपुर, गोरखपुर (3.प्र०)



‘तीसरी कसम’ उर्फ मारे गए गुलफाम

भले ही गीतकार शैलेन्द्र (फिल्म निर्माता) को इस फिल्म की वजह से अपनी जान गंवानी पड़ी हो, पर सच है कि तीसरी कसम ने शैलेन्द्र को अमर कर दिया। शैलेन्द्र ही क्यों, राजकपूर को अभिनय की अप्रतिम ऊंचाई तक पहुँचाने और कथाकार रेणु के नाम को आमजन तक पहुँचाने का काम भी इस फिल्म ने किया।



सेल्यूलाइड पर लिखी एक हृदयस्पर्शी कविता तीसरी कसम सिर्फ इसलिए एक यादगार फिल्म नहीं है कि इसे सर्वोत्तम फीचर फिल्म के लिए राष्ट्रपति का स्वर्ण कमल पुरस्कार प्राप्त हुआ, बल्कि इसलिए भी कि मित्रों और खासतौर पर राजकपूर के इस आग्रह और सुझाव को भी गीतकार से पहली बार निर्माता बने शैलेन्द्र ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया कि फिल्म की व्यावसायिक सफलता के लिए मूलकथा में मामूली हेरफेर कर दिया जाए। वस्तुतः शैलेन्द्र को इस कहानी से प्यार था, और

वे इस कथा को जस का तस फिल्माना चाहते थे। उन्हीं के आग्रह पर रेणु जी ने स्वयं फिल्म के संवाद लिखे।

रेणु की मूल कथा मारे गए गुलफाम पर आधारित यह फिल्म बासु भट्टाचार्य का भी बेहतरीन मास्टरपीस माना जाता है। हालांकि उन्होंने इन्हीं वर्षों में कई और समानान्तर फिल्में निर्देशित कीं, जैसे- अनुभव (1971), आविष्कार (1973) और गृह प्रवेश (1980) लेकिन तीसरी कसम जैसा जादू और कोई फिल्म कर न सकी। फिल्म की पृष्ठभूमि को देखते हुए प्रारंभ में फिल्म की शूटिंग की योजना बिहार और नेपाल के ग्रामीण इलाकों को ध्यान में रखकर बनाई गई थी, लेकिन कई कारणों से वास्तविक फिल्म इगतपुरी (महाराष्ट्र) में शूट की गई। (पूर्व में मधुमती फिल्म की शूटिंग भी यहीं की गई थी।) कथा में उपस्थित और फिल्म में जतन से संवार कर रखे गए चार तत्व इस फिल्म को चिर-स्मरणीय बनाते हैं। एक हीरामन और हीराबाई के बीच में सहज मानवीय संबंधों की ऊर्जा और धीरे-धीरे पनपी स्वाभाविक अंतरंगता (भौतिक नहीं) दर्शक जिसके साथ अपने को आत्मसात करता है। हीराबाई को हीरामन का जमीनी चरित्र और संगीतमय जीवन-दर्शन प्रभावित करता है, जिसे वह अपने गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, वहीं हीरामन को नौटंकी वाली बाई की बेबसी बाँधती है। इस संबंध को कोई नाम नहीं दिया जा सकता। यह संबंध समाप्त होने के लिए बना है, इस दर्द का एहसास

दर्शक को शुरू से हो जाता है। इन बेहद मुश्किल और संश्लिष्ट चरित्रों को राज और वहीदा रहमान ने जिस खूबसूरती और सहजता से निभाया है वह देखने की चीज है।

भाव-भंगिमा और आँखों से भावनाओं को, उल्लास और दर्द को व्यक्त करवा लेने की सफलता ही निर्देशक की सफलता है। राज की शोमैन वाली छवि इस फिल्म में टूट-टूट कर बिखर गई है और यहाँ है बात-बात में लजाने, शरमाने वाला एक गंवई, ठेठ गाड़ीवान! दूसरी तरफ नृत्य-कौशल के चलते हीराबाई ने नौटंकी वाली बाई के चरित्र को जीवन्त बना दिया है। फिल्म का दूसरा सशक्त पक्ष है इसका स्वाभाविक चित्रण, छायांकन और दृश्य संयोजन, जो कथा की मांग थी। सत्यजीत रे की कई फिल्में करने वाले सुब्रत मित्रा का छायांकन बेमिसाल तो है ही, दृश्य की मांग और प्रकृति के अनुसार भी है। गाँव के नैसर्गिक सौंदर्य को लगभग अकृत्रिम प्रकाश व्यवस्था के साथ श्वेत-श्याम फिल्मांकित किये जाने से एक-एक शॉट का सौंदर्य कथा की काव्यात्मकता के साथ मेल खाता हुआ है। प्रतीकात्मक बिम्बों का इस्तेमाल छायाकार और निर्देशक की पटकथा पर पकड़ को रेखांकित करता है। फिल्म का तीसरा सशक्त पक्ष है इसके संवाद, जो स्वयं रेणु के लिखे हुए हैं। संवादों की रवानगी, सहजता और ठेठपन कथा को कहीं से बिखरने नहीं देते। मूल कथा लेखक ही फिल्म का संवाद लिखे, ऐसे कम

उदाहरण मिलेंगे, परन्तु तीसरी कसम के संवाद दर्शक की जुबान पर अनायास चढ़ जाते हैं, तो इसलिए कि इसमें मीठा सा सोंधापन है।

फिल्म का चौथा सशक्त पहलू है इसके गीत और मधुर संगीत। हसरत जयपुरी और शैलेन्द्र ने इस फिल्म में गीत लिखते वक्त न केवल फिल्म के समूचे परिवेश और चरित्रों को ध्यान में रखा, बल्कि लोकधुन और नौटंकी विधा को भी साथ लिया। (पान खाये सैय्या हमारो...)। हीरामन के समूचे चरित्र को उभारता सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है... या फिर दुनियाँ बनाने वाले, क्या तेरे मन में समाई.... के बहाने हीरामन का गाँव की लड़की महुआ को

याद करना, या फिर नौटंकी शैली में लिखा गया गीत आ, अब तो आज, रात ढलने लगी... ऐसे गीत हैं जो आज भी कान में पड़ते ही जुबान पर आ जाते हैं। ग्रामीण परिवेश का एक और गीत चलत मुसाफिर मोह लियो रे... भी एक सदाबहार गीत है। शंकर जयकिशन का संगीत शोर रहित और कर्णप्रिय तो है ही, कथ्य के साथ न्याय भी करता है।

आज जबकि भारतीय फिल्म जगत से अच्छी साहित्यिक कृतियों का नाता लगभग टूट चुका है। फिल्म उद्योग की जटिलतायें इतनी बढ़ चुकी हैं कि कोई निर्माता पचासों करोड़ खर्च करके किसी साहित्यिक रचना पर फिल्म बनाने का खतरा चाहकर भी मोल नहीं ले सकता,

तीसरी कसम जैसी 70 से 90 के दशक में बनी ऐसी तमाम फिल्मों का याद आना स्वाभाविक है। आज भी बंगला फिल्म जगत में साहित्यिक फिल्मों के अच्छे दर्शक हैं। दूसरी तरफ हिंदी कृतियों की कमी नहीं, पर फिल्में नहीं बनतीं। कारण कई हैं, पर एक बड़ा कारण है हिन्दी लेखकों का अलग-अलग कटे रहना और हिन्दी कृतियों का सीमित पाठक वर्ग। एक दूसरी वजह है अच्छे पटकथा लेखकों का अभाव, जो एक अच्छी कृति को एक सफल पटकथा में बदल सकें।

(लखनऊ दूरदर्शन से संबद्ध)
11/7 डॉलीबाग, लखनऊ, उ० प्र०



अगला अंक
निकट - 4, मार्च 2009

महिला रचनाकार अंक

संभावित रचनाकार

नासिरा शर्मा, मेहरूनिसा परवेज़, चित्रा मुद्गल, ममता कालिया

मैत्रेयी पुष्पा, पूर्णिमा वर्मन, रजनी गुप्त, कविता, शिल्पी,
सोनी सिंह, प्रत्यक्षा, गगन गिल, गीताश्री की रचनाएं।

- साक्षात्कार • उपन्यास अंश • संस्मरण • कहानियाँ • गीत
- कविताओं के अलावा सभी स्तम्भ

संपादकीय कार्यालय

P.O. Box-52088
ABUDHABI, UAE
Email : krishnatbihari@yahoo.com

